Chap-4

चतुर्थ अध्याय

जयसिंह 'व्यथित' की काव्य रचनाएँ

जयसिंह 'व्यथित' की काव्य रचनाएँ

''समकालीन हिन्दी ग़ज़लें''

हिन्दी में ग़ज़ल लेखन का पुराना इतिहास है। भक्तिकाल में निराकारवादी सूफी कवियों ने मनसदी शैली में ग़जलों का हिन्दुस्तानीकरण किया था। इससे पहले फारसी और अरबी में गज़ल लेखन का प्रचलन था। भारतवर्ष में उर्दू का शमशेर ने गज़लों को अग्रसर किया और गज़लें एक समय में राजदरबारों और रईशों के दरबारों की शोभा बन गई।

भक्तिकाल में अनेक भक्त कवियों ने गज़ल की शैली पर ही लोकगीतों का निर्माण किया। कबीर और जायसी के गीतों में भी गज़लों की वानगी देखी जा सकती है।

आधुनिक युग में भारतेन्दुबाबू हरीशचन्द्र ने हिन्दी में ग़ज़ल विद्या को लोकाग्रही बनाया और फिर हिन्दी के अनेक वरेण्य हस्ताक्षरों ने इस विद्या को अपने कृतित्व से सम्पन्न किया।

'समकालीन हिन्दी ग़ज़लें' के प्रधान सम्पादक डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी हैं। इस ग़ज़ल संग्रह में कुल 32 कवियों की 125 ग़ज़लें हैं। पुस्तक के आकर्षक कवर पर उड़ाने भरते हुए दो पक्षी मानों 'व्यथित' जी की पंक्तियों की पुनरावृत्ति कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे गगन से नीचे जमीन पर उतरने को बेताब हैं। पूरे संकलन में यही जमीनी रिश्ता ग़ज़लकारों के आस-पास बेचैनी के साथ उनके अपने पैमाने के हिसाब से दर्द का सबब बना हुआ है।

सिद्धार्थ मिश्र का कथन हैं कि– ''यह मेज की बात है कि ग़ज़ल के किरदार जो जीने वाला ग़ज़ल के रूहानी और जिस्मानी रिश्तों को परखनेवाला एक मुकम्मिल शायर शुरूआत में ही अपनी तर्जेबयानी की छाप दिल पर छोड़ता है। नाम है- पाण्डेय आशुतोष। जिन्दगी को जिस पाण्डेय जी ने ग़ज़ल में परिभाषित किया है शायद हिन्दी में अन्यत्र दुर्लभ है। सूफियाना अन्दाज में कहा गया एक शेर ग़ज़ल के कद को नापने के लिए काफी है-

मौत के नाम होंगे हजारों मगर।
बूँद अमृत की अविकल्प है जिन्दगी॥''[1]

राष्ट्रीय शितिज पर वतन परस्तों और न्याय के काले कारनामों का जिक्र जिन शब्दों में हुआ है, वह आम आदमी के सर के उपर से गुजर जाने वाला है। प्रस्तुत शेर शंख का शाब्दिक और लाक्षणिक अर्थ काबिले तारिफ हैं-

''खा चुके शंख पर सिद्ध कौड़ी नहीं।
न्याय मूरत उन्हीं की करें अर्चना॥''[2]

मानव मन एक तरफ जहाँ बेचेनियों से जूझ रहा है, भीतर-बाहर महाभारत झेल रहा है वहीं वह चिन्तन और चित्त विहीन हुआ है। ऐसे में आचार्य भगवत दुबे जी छटपटाहट स्वाभाविक ही है। जीवन को बरकरार और मुकम्मिल रखने के लिए अवाम को उनकी चेतावनी का सबक गौर तलब है-

''बाहरी ताजी हवा बिन, दम न घुट जाए हमारा ।

है जरुरी घर में होना, सोच की कुछ खिड़कियों का ॥''[3]

विजयकुमार तिवारी का कथन है कि– '' आज आदमी ज्ञानी, उपदेशक ज्यादा है। इंसान-इंसान की भाषा नहीं समझता। प्रेम की रिक्ता के कारण वह जानवर से भी गया होता है। **श्री ओंकरनाथ श्रीवास्तव के शब्दों में–** 'जानवर से भी बुरा अब हो गया है आदमी।' मानवता को ही नहीं दर्द ने अपनी गिरफ्त में सारी सृष्टी को समेट लिया है-

दर्द के सैयाद ने जिस पर नजर डाली न हो।

इस चमन में कोई भी ऐसी कली मिलती नहीं ॥''[4]

ग़ज़ल की विधा दोहे की तरह नाविक के तीर जैसे दिल पर गहरी घा करने वाली विधा है। इसमें गागर में सागर भरने की क्षमता है। इसका वार बड़ा करारा, सचोट और मर्मस्थल को वेधने वाला होता है और कभी खाली नहीं जाता है। इसी कारण हिन्दी के साहित्यकार इस विधा की तरफ आकर्षित हुए। वास्तव में आज ग़ज़ल की विधा हिन्दी साहित्य की प्रमुख विधा बन गई है। अब तक ग़ज़ल की विधा के कई सशक्त संग्रह हिन्दी साहित्य में आ चुके हैं।

डॉ. गणेशदत्त सारस्वत का कथन है कि– '' आईना अन्धों के हाथ में है। लोकतंत्र की बागडोर उनके हाथ में है जो आपाद मस्तक कालिमा में डूबे हुए हैं। अन्धकार से प्रकाश में ले जाने के लिए वे ही आगे हैं। इन परिस्थितियों में कवियों की चिन्ताएँ स्वाभाविक हैं। इशारों में सच बयानी युँ प्रस्तुत हैं-

सूरज को ढक लिया तिमिर के दूतों ने,

दिन में ही अब रात हो रही क्या होगा?''[5]

इसी तरह एक और द्रष्टांत प्रस्तुत है-

''रोशनी का लिए व्याकरण,

घूमता है तिमिर आजकल।''[6]

ग़ज़ल मुख्य रूप से उर्दू की चर्चित विधा रही है। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने सर्व प्रथम ग़ज़ल कहने का प्रयास किया था। दक्षिण में इब्राहिम आदिलशाह हुए, जिनकी रचनाएँ उपलब्ध नहीं हैं। इसके बाद मुहम्मद कुली कुतुबशाह की ग़ज़ले मिलती है। दक्षिण भारत के ग़ज़लकारों में बहरी, नुस्त्रती, सिराज और वली आदि उल्लेख नीय है। फाईज उत्तरी भारत के सबसे पहले साहबे दीवान शायर माने जाते है। फाईज के समकालीन शायरों में हातिम शाह मुबारक आबरू और मो. शाकिर नाजी का नाम आता है।

रवीन्द्र प्रभात का कथन है कि - ''एक ज़माना था जब आशिक और मासूका की मोहब्बत भरी गुफ्तगू को ग़ज़ल कहा जाता था। हुस्न-इश्क और साकी-सराब की रसीली अभिव्यक्ति उसकी भावभूमि हुआ करती थी। जिससे परे जाकर दूसरे भावभूमि पर ग़ज़ल कहना ग़ज़लकारों के लिए दुस्साहस भरा कार्य हुआ करता था। ऐसी परिस्थिति में नयी क्रांति की प्रस्तावना किसी भी कवि के लिए सम्भव नहीं थी। सच तो यह है कि गज़ल के रूप में उसी कलाम को स्वीकार किया जाता था जो औरतों के हुस्न और जमाल की तारीफ करे। यहाँ तक कि जो हिन्दी की ग़ज़लें हुआ करती थीं उसमें उर्दू ग़ज़लों का व्यापक प्रभाव देखा जाता था। यही कारण था कि जब पहली बार शमशेर ने पारम्परिक रूमानी संस्कार से ऊपर उठकर गज़ल रचना की तो डॉ. रामविलास शर्मा ने यह कहकर खारिज कर दिया कि 'ग़ज़ल तो दरबारों से निकली हुई विधा है, जो प्रगतिशील मूल्यों को अभिव्यक्त करने में अक्षम है।' किन्तु अब स्थिति बिलकुल बदल चुकी है, हिन्दी वालों ने ग़ज़ल को सिर्फ स्वीकार ही नहीं किया है बल्कि उसका नया सौंदर्य शास्त्र भी गढ़ा है। परिणामत: आज गज़ल उर्दू ही नहीं हिन्दी की भी चर्चित विधा है। ''[7]

रवीन्द्र प्रभातजी आगे क्रमश: लिखते है कि -''हिन्दी ग़ज़ल के अतीत की

चर्चा किये बिना उसकी संभावनाओं के बारे में कुछ कह पाना मुनासिब नहीं होगा। क्योंकि ग़ज़ल रचने की परम्परा हिन्दी में भी बहुत पुरानी है। यदि अमीर खुसरो ने अपनी कतिपय रचनाओं के माध्यम से हिन्दी में गज़ल की संभावनाओं का सूत्रपात किया, तो कालांतर में कबीर, शौकी और भारेन्दु हरिशचन्द्र ने उसे सिंचित कर विकसित किया। बाद के दिनों के प्रेमधन, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, निराला, शमशेर, त्रिलोचन आदि ने उसे मांजने का प्रयास किया। हालाँकि शमशेर ने उस विधा को गति और दिशा दी फिर हंसराज रहबर, जानकी बल्लभशास्त्री, रामदास मिश्र आदि ने नमे सौन्दर्य शास्त्र को गढ़ने का एक महत्वपूर्ण काम किया। इतिहास साक्षी है कि नयी कविता के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर दुष्यन्त कुमार ने ग़ज़ल के माध्यम से एक नयी क्रांति की प्रस्तावना की। गज़ल रचना के नये क्षितिज का उद्‌घाटन ही नहीं, वरन् हिन्दी कविता की स्वतंत्र विद्या की स्वीकृति का आधार भी तैयार किया। दुष्यन्त के बाद अदम गोंडवी ही एक ऐसे ग़ज़लकार हैं, जिन्होंने ग़ज़ल के माध्यम से कल्पना के सुरम्य अतरंगें आलोक में धुंआधार प्रकाश उड़ेलने का काम किया। इस प्रकार नचिकेता का मानना है -'कि गज़ल अपने स्वाभाविक विकास क्रम में, अपनी समाज सापेक्ष और समय-सापेक्ष वैचारिक अन्तर्वस्तु में लगातार परिवर्तन की राह से गुजरते हुए आज जनवादी और प्रगतिशील विचारधारा का अलंवरदार हो गयी है। इसलिये गज़लों की उपयोगिता अब संघर्षशील इलाकों में भी महसूस की जाने लगी है और गज़ल की व्यप्ति वहाँ बढ़ी है।''[8]

हिन्दी भाषा में ग़ज़ल का आरम्भ आज से नहीं है। आधुनिक काल के पूर्वार्द्ध में भी ग़ज़लें कही गयीं किन्तु हिन्दी का वह परिष्कृत रूप जो आज है पहले नहीं था। गौर तलब है कि उर्दू शायरी की इस विधा को हिन्दी जमीन पर ले आने के लिए आज तक काफी मशुक्कत हिन्दी के कवियों ने की है। अभी भी इसके स्वरूप को हिन्दी की प्रकृति के अनुसार तराशने की गुंजाइश बनी हुई है।

हिन्दी की ''समकालीन हिन्दी गज़लें'' इस पुस्तक के प्रधान सम्पादक हैं डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी हैं। सम्पादन कार्य डॉ. 'व्यथित'जी के लिए नया नहीं है। हिन्दी मासिक पत्रिका 'रैन बसेरा' के डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी प्रमुख सम्पादक है। उनका हिन्दी साहित्य में अद्‌भूत योगदान है। आज भी त्रासदी में डॉ. 'व्यथित'जी की जिजीविषा एवं काव्यात्मा जीवन मूल्यों की वापसी के प्रति आशान्वित है-

''ढले रात काली सुहानी सुबह हो।
यही आस पाले मैं चलता रहूँगा।।''[9]

सामाजिक प्रदूषणों की भयावह त्रासदी से आज अवाम रूबरू है। हर संवेदनशील मन रोने के लिए विवश है। रक्षा का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। जल प्रदूषण के भी दानवी शक्ति जन जीवन को ही नहीं बल्कि प्रकृति को नष्ट करने पर तुली हुई है। इस पर चिंता व्यक्त हुए **डॉ. राम सनेही लाल शर्मा 'यायावर'** लिखते हैं-

''यमुना में तेजाब बह रहा सूख गया वंशीवट तट का।
मरती हुई मछलियाँ बोली त्राहिमाम हे राधा। राधा।।''[10]

कवि भी तो मानव ही है किन्तु अपने गहन चिन्तन और कोमल अनुभूतियों के कारण वह असाधारण है। कवि का जीवन समाज के लिए सदा समर्पित रहता है। जब सारा अवाम भीतर बाहर आग में जल रहा हो उसके दिलो-दिमाग में त्रासदी के शरारे मुसलसल छूट रहे हों, भला ऐसे में उसे रंगीनियाँ कैसे लुभा सकती है। **उमाशंकर लोहिया का स्पष्टीकरण कितना यथार्थ परक है-**

''उठ रहे शरारे जहनो-जिगर में,
लिखें कहाँ से हुस्नों-शबाब के फूल।।''[11]

वर्तमान की एक और त्रासदी है हिंसा यह एक खतरनाक खेल है, यह अपना

पक्ष भी प्रस्तुत नहीं करने देता । दर्द को कहना, न्याय की बात करना गुनाह है। जुल्मों-सितम की इस तल्खी को बड़े ही खूबसूरत ढ़ंग से **डॉ. सुरेन्द्रनाथ त्रिपाठी ने लिखा है–**

"ये दस्तूर कैसा जमानें का है,
बात निकली नहीं की जुबां कट गई॥"[12]

जुबान कटने के इस धंधे में एक ही नहीं कई कारण अलग- अलग लगे हुए हैं। सियासत थी कम जिम्मेदार नहीं है। एक साथ त्रासदी की अनेक जिम्मेदारियाँ सियासत एवं सियासतदारों के नाम हैं। शान्ति, सद्भावना और प्यार को जीनेवाला ईमानदार व्यक्तित्व जैसे-तैसे अपनी अस्मिता को बचाकर जी रहा है। सियासत की ध्वंस लीला खेतों की संस्कृतियों तक फैली है। इस विषय पर **डॉ. कोमल शास्त्री लिखते हैं –**

'कोमल' सियासत ने किया है जिन्दगी जीना मुहाल,
आबरू को ओढ़कर बे आबरू रहना पड़ा।"[13]

रूढ़ियों और अंधविश्वासों को भी से जोड़ने का अच्छा प्रयास ही नहीं अपितु मार्गदर्शन भी सलीके के साथ देते हुए **विमलेश कुमार चतुर्वेदी 'विमल'** ने समय के तकाजे को उभारा है-

"दूध पत्थर को चढ़ाने वालों,
पानी प्यासे को पिलाओं तो सही।"[14]

समकालीन ग़ज़लकार की मान्यता है कि जब दिल से आहें उठती है, तब ग़ज़ल जनमती है, जब आँखों में आँसू रूठ जाते हैं, तब ग़ज़ल होती है। **महेन्द्र प्रताप सिंह 'गरूड' सुलतानपूरी** की एक पंक्ति प्रस्तुत है-

"आह दिल से उठे तो ग़ज़ल होती है,
अश्क आँखों में रूठे, तो ग़ज़ल होती है।"[15]

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

उपर्युक्त पंक्तियों की गहराई में उतरा जाय तब हम पायेंगे कि दिल में आहों का उठना मानवीय जीवन की त्रासदी का परिचायक है। आँखों से आँसू तब छलकते हैं, जब रोते-राते हद हो जाती है और आँखों में आँसू आते नहीं, इन पंक्तियों में गरीबी, भूख एवं विवशता के मनोविज्ञान परक संवेदनात्कम बिम्बों को सरलता से देखा जा सकते है।

डॉ. सुशीलकुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु' का कथन है कि– ''ग़ज़ल शब्द अरबी भाषा का स्त्रीलिंग शब्द है, जिसका अर्थ ऐसी पद्यात्मक रचना से है, जिसमें नायिका के सौंदर्य एवं उसके प्रति उत्पन्न प्रेम का वर्णन हो, इसी अर्थ में भारतीय ग़ज़ल अमीर खुसरो (1255 ई.) से प्रारंभ हुई। यकरंग, मीर, मोमिन, गालिब आदि हिन्दुस्तानी ग़ज़ल आशिक-माशूक की चोंचले बाजी में व्यस्त रही, शायर और नासेह के मतभेदों की चर्चा करती रही तथा शराब और शबाब में झूमती रही। मगर 19 वीं शताब्दी में ग़ज़ल के तेवर बदल गए। आज़ाद, चकबस्त और जिगर आदि ग़ज़लकारों ने जुल्फों की खूबसूरती और जलवागाहों को छोड़कर आम आदमी के दु:ख-दर्द को ग़ज़लों का वर्ण्य विषय बनाना प्रारंभ कर दिया। आधुनिक युग में भी जिन अनेक ग़ज़लकारों ने हिन्दी में ग़ज़लें लिखीं उनमें दुष्यंतकुमार का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी अग्रलिखित पंक्तियों में समकालीन हिन्दी गज़लों की पृष्ठ भूमि साफ-साफ दिखती है।

जियें तो अपने बगीचे में गुलमोहर के लिए,
मरें तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए।''[16]

डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'– आलोच्य गज़ल संग्रह के सभी रचना कर्मियों पर प्रकाश नहीं डाला जा सकता फिर भी इस संग्रह में जो अन्य उल्लेखनीय शायर हैं उनमें प्रमुख हैं आचार्य भगवत दूबे, डॉ. गणेश दत्त सारस्वत, जितेन्द्र धीर 'श्रीश', राम सनेहीलाल शर्मा, पारूकान्त देसाई आदि।

अंतत: यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि 'समकालीन हिन्दी ग़ज़ले' देश

का समर्थ, सार्थक एवं पूर्ण दर्पण है और गुजरात हिन्दी विद्यापीठ, ओढ़व, अहमदाबाद का राष्ट्र को सारस्वत सर्मपण है, लघु कलेवर में सिमटे तीखे तेवर इसका आकर्षण है। पुस्तक का कलेवर उत्तम है।

संदर्भ-सूची

1) प्रधान संपा.-कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-आभिनन्दन ग्रंथ, पुष्ठ-5/138

2) द्वारिकाधीश नारायण पांडेय 'पाण्डेय आशुतोष' समकालीन हिन्दी ग़ज़लें, पृष्ठ-31

3) आचार्य भगवत दुबे- समकालीन हिन्दी ग़ज़ल, पृष्ठ-40

4) विजयकुमार तिवारी-समकालीन हिन्दी ग़ज़ले, पृष्ठ-115

5) डॉ. गणेशदत्त सारस्वत-समकालीन हिन्दी ग़ज़लें, पृष्ठ-64

6) डॉ. कोमल शास्त्री-समकालीन हिन्दी ग़ज़लें, पृष्ठ-60

7) रवीन्द्र प्रभात-समकालीन हिन्दी ग़ज़लें, पृष्ठ-4

8) रवीन्द्र प्रभात-समकालीन हिन्दी ग़ज़लें, पृष्ठ-6-7

9) प्रधान संपा. डॉ. 'व्यथित'जी- समकालीन हिन्दी ग़ज़लें, पृष्ठ-74

10) डॉ. राम सनेहीलाल शर्मा 'यायावर' समकालीन हिन्दी ग़ज़ले, पृष्ठ-107

11) उमाशंकर लोहिया- समकालीन हिन्दी ग़ज़ले, पृष्ठ-43

12) डॉ. सुरेन्द्र त्रिपाठी समकालीन हिन्दी ग़ज़ले, पृष्ठ-133

13) डॉ. कोमल शास्त्री समकालीन हिन्दी ग़ज़ले, पृष्ठ-58

14) विमलेश कुमार चतुर्वेदी 'विमल' समकालीन हिन्दी ग़ज़ले, पृष्ठ-123

15) महेन्द्र प्रताप सिंह 'गरूड' सुलतानपुरी-डॉ. जयसिंह अभिनंदनग्रंथ, पृष्ठ-5/142

16) डॉ. सुशील कुमार पाण्डेय 'साहित्येन्दु'-डॉ. जयसिंह अभिनंदनग्रंथ, पृष्ठ-5/141

अनुभूति के स्वर (दोहा–काव्य)

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित 'अनुभूति के स्वर' दोहा-काव्य में कुल '27' शीर्षकों में विभाजित होते हुए भी अनेक अकथ्य शीर्षकों में व्याप्त है। नाम और गुणान्विति के आधार पर इसका धरातल आकाश की भाँति विस्तृत और उज्ज्वल है। काव्य कृति में वस्तु: व्यथित जी ने अपने जीवन के तमाम जीवन्त अनुभूतियों का काव्यांकित किया है। इस दोहा-काव्य में 700 दोहे हैं।

दोहा, छंद '13' और '11'के यति से '4' चरणों में अर्थात् '2' पंक्ति में सम्पन्न होने वाला छंद है। जिसके अंत में गुरू और लघु का संयोजन रहता है। इन दोहों का वाचन करने से ऐसा प्रतित होता है। जैसे दोहा और छंद डॉ. व्यथित जी को सिद्ध हो गया था। इसीलिए इन दोहों में कहीं भी छंद दोष अवलौकित नहीं होता।

डॉ. कोमल शास्त्री का कथन है कि–''व्यथित जी सर्वोदयी चिन्तक हैं। उनकी रचनाओं में सर्वोदयी चेतना के सूत्र सर्वत्र है। वर्तमान युगीन सन्दर्भो लेकर कवि को अपनी अनुभूतियों को स्वर देने में सफलता मिली है। पर्यावरण, गरीबी, नैतिकता, भ्रष्टाचार, नेता, शोषण, शराब आदि विभीषिका से संत्रस्त कवि की कलम ने जहाँ इनके चित्र उकेरे हैं, समस्याओं के समाधान में अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, वहीं राष्ट्र और लोक संस्कृति पर भी अपनी पैनी दृष्टि रखी है। सरस्वती, माँ, गंगा, ईश्वर, गाँधी, खादी, आज़ादी, और भाषा आदि पर दोहों की रचना करके राष्ट्रीय अस्मिता को नवजागरण का संदेश दिया है। व्यथित जी के दोहों का रचना संसार अत्यन्त व्याप्त है। इनका चिन्तन बहुआयामी तो है ही गहन गुफाओं में प्रकाश सा देदी व्यमान है। ग्रामीण अंचल में जन्म लेने के कारण पशु एवं प्रकृति प्रेम अत्यन्त ही स्वाभाविक हैं।''[1]

क्रमश: **कोमल शास्त्री अपना कथन आगे बढ़ाते हुए लिखते हैं कि-**''दोहें की

प्रवृत्ति बड़ी विचित्र है। कम शब्दों में दीर्घ अर्थ दे देना किंवा उक्ति वैचित्र्य इसका वैशिष्ट्य है। कविता की भाषा मेरे विचार से किसी शब्द-कोष की भाषा नहीं होती। कविता की भाषा अनुभव की भाषा होती है। भाव सम्प्रेषणीयता की निर्बाधता कवि कर्म की सफलता है। इसलिए तो कवि दोहों से मैत्री करके प्रसन्न हैं। कवि अपने दोहों के सम्बन्ध में घोषणा करते हुए हृदय की ममता को उड़ेल देता है। वह अपने दर्द की छाती को कलेजे से लगाये हुए अत्यन्त सहज भाव में किन्तु प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी बात कहता है-

भाषा भाव निचोड़ का, शुद्ध सात्विक रूप।

दोहे मेरे दर्द हैं, लगे न इनको धूप॥''[2]

कवि का सात्विक रूप दोहों की सामर्थ्य को और भी बढ़ा देता है। ऋषि वाणी में लिखित उपदेश शैली के दोहे कवि के व्यक्तित्व को भरपूर उठा देते हैं। कवि के पास ऐसा लगता है कि कबीर का हृदय है। प्रेम तत्व की तलाश में कवि फकीर सा दिखाई देता है। वास्तव में एक सच्चा कवि फकीर होता है। 'व्यथित'जी धर्म के नाम पर सामाजिक अवमूल्यन और विखण्डन के प्रति गंभीरता से चिन्तित हैं। कवि सम्पूर्ण जगत में अनेक धर्मों की जगह केवल एक ही **'मानव-धर्म'** चाहता है। धर्मों से यह उबा हुआ दिखाई देता है। मजहब के स्वार्थी ठेकेदारों को बेनकाब करते हुए 'व्यथित'जी सत्य कहने में नहीं चूकते, जो निम्नलिखित दोहा से पता चलता है -

''पंडित, मुल्ला, पादरी मतलब के सब यार।

एक ईश की बात का, नहीं बताते सार॥''[3]

इस प्रकार उपर्युक्त दोहे के माध्यम से कवि किसी एक धर्म या जाति विशेष की बात न करके सम्पूर्ण मानव जाति को मानवता का सन्देश देना चाहता है। जिसमें समस्त धर्मों एवं जातियों का समावेश हो। मानवता मात्र धर्म या जाति तक सीमित

है, ऐसा भी कवि का मानना नहीं है बल्कि मानव का मानव के प्रति, समाज के प्रति और प्राणियों के प्रति क्या कर्तव्य होना चाहिए और उसका निर्वाह कैसे करना चाहिए, यही संदेश कवि मानवता में बताता है और सबको एक होने की बात भी करता है, जो उपर्युक्त दोहें में भी व्यक्त है।

कवि का संवेदनशील मन बड़ी बेबाकी से आर-पार की बातें करता है। आज के धूर्त नेताओं पर करारा प्रहार करते है। नशा, शोषण, दहेज आदि समस्याओं को वर्णन करते हुए उन्हें बढ़ावा देनेवाले नर पशुओं को भी धिक्कारने में कवि का निशाना अचूक है। आज के महासमर में वह कहीं कृष्ण तो कहीं अर्जुन की तरह दिखाई देता है। उसकी निर्भीक्ता और साफगोई दोहों को काफी हद तक मजबूती प्रदान करती है।

इस दोहा-काव्य में राष्ट्रीय एकता के प्रति सजग एकेश्वरवादी कवि का दार्शनिक चिन्तन स्थूल से सूक्ष्म की ओर है। सिंधु की ओर भागती हुई गंगा के व्याज से आत्मा का परमात्मा से सम्बन्ध स्थापना, सूफियों की भाषा बोलता है। हर-हर में ध्वन्यात्मकता के साथ शिव तत्व भी सापेक्ष हैं-

"हर-हर करती भागती, चली सिन्धु की ओर।
चले आत्मा पकड़ ज्यों, परमतत्व की डोर ॥"[4]

कवि 'व्यथित'जी साहित्य में प्रचलित दुखद शैली का कहीं भी प्रयोग नहीं किया है। सरस शैली के माध्यम से पाठकों के सामने अपनी बात को इस रूप में व्यक्त करना किसी आम आदमी भी उससे परिचित हो सके, यह 'व्यथित'जी के ही वश की बात है। जिसमें प्रकृति से लेकर गाँव के रीति रिवाजों को भी समेट रखा है।

'अनुभूति के स्वर' दोहा-काव्य में 'व्यथित'जी ने जो कुछ देखा और जैसा महसूस किया उसे बिना नमक-मिर्च लगाये ही व्यक्त किया है। अभिव्यक्ति की मौलिकता और सादृश्य विधान दोहों को और श्री आकर्षक बना देता है। अतिशयोक्ति

से कोसों दूर उपमा और रूपक की छटा पदे-पदे देखने को मिलती है। प्रकृति, ज्ञान, मौसम एवं ऋतुओं के दोहें, विस्तार एवं सूक्ष्म निरीक्षण के साथ प्रकृति सौदंर्योपासना को इस दोहा काव्य में सिद्ध करते हैं। ग्रामीण परिवेश में रहकर ग्रामीण जीवन जीनेवाले चिन्तक कवि के अथाह मनोभावों में मार्मिक व्यंजना है। कथन में परिपक्वता है। वासन्ती वैभव का एक दृश्य का वर्णन करते हुए 'व्यथित'जी ने लिखा है-

''फूल सरसों खेत में, पहने साड़ी पीत।

लगे नवोढ़ा से सजी, तीसी गाये गीत ॥''[5]

डॉ. 'व्यथित'जी ने 'अनुभूति के स्वर' में गाँव की कथा-व्यथा, रीति-रिवाज और परिवार तथा समाज के प्रति मोह की वर्णन किया है। पेड़ और बेलि के माध्यम से एकदम सहज रूप से मानवी करण के ये दृश्यांकन सर्वथा अद्वितीय एवं चितग्राही अवधी की मिठास से भरपूर है। जो निम्नलिखित है-

''पूछे विरना पेड़ से, वेली भरे अंकवार।

भाई बाबू हाल अरु, सारा गाँव-जवार॥''[6]

इस दोहा-काव्य कृति में 'व्यथित'जी ने बिहारी और रहीम की दोहा सतसई को केन्द्र में रखकर 700 दोहें से युक्त इस कृति में स्वानुभूति के तत्वों को इस रूप में व्यक्त किया है कि कहीं भी किसी प्रकार का ऐसी अनुभूति पाठक को नहीं होती कि यह निरर्थक है। इसमें बाल्यपन से लेकर जीवन के एक लम्बे समय तक की, गाँव से लेकर शहर तक तथा दोनों की राजनीति का बहुत ही सटीक वर्णन किया है। जिसको मैनें भी अपने शोध-प्रबन्ध में तथ्य रूपेण यथोचित रूप में दिखाने का प्रयास किया है।

अभिव्यक्तिगत् सौंदर्य में कहीं-कहीं तो कवि सामान्य कथ्यों को स्पष्ट बयानी के साथ व्यक्त कर जाता है, तो कहीं-कहीं उसकी प्रखर काव्य अनुभूतियाँ मार्मिक

संवेदनाओं की संवाहक बनकर सामने आती है। जैसे 'गाय' नामक सर्ग में डॉ. 'व्यथित'जी ने गाय की सामाजिक एवं धार्मिक महत्ता को बड़े ही सहज ढंग से उच्चरित करते हुए लिखते हैं-

''बचपन बीता कृष्ण का, चरा चरा कर गाय।
गो सेवा का फल अमित, संस्कृति रही बताय ॥''[7]

इसी प्रकार का एक दूसरा दोहा निम्नलिखित हैं-

''धृत मक्खन की खान है, कृषि का है आधार।
गौ निरीह पर कर रहा, मानव अत्याचार ॥''[8]

डॉ. 'व्यथित'जी के दोहें वाग्जाल नहीं है। भाषा के प्रति कवि का मिजाज बेहद सरल है। कविता में भाषा काठिन्य के परिणाम से वे भली भांति परिचित हैं। सरल सुबोध शब्दों को सानुकूल स्थापन की कला उनको अच्छी तरह से आती है। धरती पुत्र होने के कारण उनके दोहों में विभिन्न भाषाओं के आंचलिक और बहु प्रचलित शब्दों की भरमार है। अवधी के ठेठ, हेठ, गाढ़, चौंचाल, डाभ, सर्वस, जलावन आदि अनेक शब्द दोहों के प्राण बन गये हैं।

गुजराती का बहुप्रचलित शब्द 'भोग' तथा 'हाथा' आदि भी कवि के नज़रों से नहीं बच सके हैं। लोक-जीवन में रचे, बसे हिन्दी में समाहित उर्दू शब्दों, जैसे-आबाद, नफरत, अरमान, हुजूर, डर, खुश्बू, तकरार,जहान, कुदरत, शान, पाक, आदि दोहों के दामन को सजाने में लगे हुए हैं।

मुहाविरों और लोकोक्तियों का चमत्कार भी अनूठा है। खून-चूसना, भोग लगाना, पानी उतरना, चित्र उरेहना, पोल खोलना, गाड़ी ठेलना, भाड़ झोंकना, विस्तर बाँधना, हाथ मलना आदि पूरी संगति के साथ भाषा में भरे पड़े हैं। दोहों में ये मुहाविरें तथा लोकोक्तियाँ अँगूठी में नग की तरह जुड़े हुए मिलते हैं। दोहों की रसवता के साथ

समप्रेषणीयता अविचिछन्न रूप से विद्यामान है। जीवन्त एवं सार्थक शब्दावली से युक्त दोहे कहीं भी छद्म नहीं गढ़ते। इसी कारण से प्रवाह में निरन्तरता कायम है।

इसी तरह जहाँ कवि अपनी संवेद्य अनुभूतियों को सतरंगी कल्पनाओं से अभिमंड़ित करके काव्यांकित करता है तो उसमें सन्निहित कवि की उद्दात विचार धाराएँ सामने आती है। जैसे-

''सागर के विस्तार को, देखा आँखे फाड़ ।

लगता स्वयं विराट है, बैठा झंडा गाड़ ॥''[9]

इसी तरह एक दूसरा दोहा देखिए-

''सागर तो निस्सीम है, मन भी है निस्सीम।

पर सीमित यह देह है, लगता कड़ुवा नीम ॥''[10]

प्रशासनाधिकारियों और नेताओं पर व्यंग्य करते हुए कवि 'व्यथित'जी लिखते हैं-

''यह तो काला नाग है, काली दह का वंश।

दुर्जन इसका गोत्र है, देता सबको दंश ॥''[11]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने इन दोहों को '27' उपखण्डों में विभाजित करके संकलित किया है। संवेदनाओं के स्तर जो उपखण्ड विशेषरूप से भाव प्रवणता को प्रकट करते हैं। इस दोहा-काव्य में माँ, ईश्वर, गंगा, गरीबी, बच्चे, धरती, गाय आदि प्रमुख है। जिन उपखण्डों में कवि की गहन वैचारिकी के साथ उसके कथ्य में निहित तीखा व्यंग्य उद्घाटित होता है। उनमें नेता, भ्रष्टाचार, आज़ादी, शराब, दहेज, भाषा आदि प्रमुख है।

डॉ. 'व्यथित'जी आधुनिक सामाजिक और राजनीतिक अवस्था से परिचित होते

हुए भी अपनी प्राचीन परंपराओं के सम्मोहन से अलग आभाषित नहीं होता। उसकी अंतरात्मा शहर की द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी बाह्य आडंबर में उलझकर जब 'व्यथित'जी और भी बेचैन होते हैं, तब ग्राम्यांचल के सुखद छाँव का वह स्मरण करता है। गरीबी, श्रम, गाय, बच्चे, दहेज जैसे सर्गो में कवि ने अपनी आँचलिकता के प्रति रोष प्रकट करते हुए व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त किया है। कहीं-कहीं कवि भावुक क्षण में अपेक्षा कृत अधिक धार्मिक हो उठता है और तब वह श्रद्धा युक्त शब्दों से अपने इष्ट की महत्ता ज्ञापित करने लगता है जैसे-

''भक्त हुए संसार में, बड़े एक से एक ।

किन्तु वीर हनुमान दिखा न कोई नेक ॥''[12]

इसी तरह एक और दोहा देखिए-

''अहं बना दीवार है, जाऊँ कैसे पार ।

सांई तो इस पार है, गया बहुत मैं हार ॥''[13]

इसी तरह एक दूसरा दोहा देखिए-

''पंडित, मुल्ला, पादरी, मतलब के सब यार ।

एक ईश की बात का, नहीं बताते सार ॥''[14]

डॉ. व्यथित जी ने भुक्तक काव्य में अन्तर्वेदना को सर्वाधिक स्वर दिया है। एक सर्वोदयी चिन्तक होने से विद्यमान अरजकताओं विभीषिकताओं का वे न सिर्फ चित्रण करते हैं अपितु समस्याओं के समाधान में भी अपने विचार प्रस्तुत करके अपने दायित्व का सजग निर्वहन करते हैं। ग्राम्यांचल की परवरिश के परिणाम स्वरूप उन्हें प्रकृति, पशु-पक्षियों से भी पर्याप्त लगाव है।

कवि ने आमुख पर ही **'अनुभूतियों के स्वर'** लिखकर इसे जीवन्त अनुभूतियों

का दस्तावेज बनाया है। जिसमें पूरा संस्कृति का गौरव समाहित है तथा जिसमें आधुनातम् संस्कृति के परिवर्तित मूल्य सन्निहित है तथा संप्रेक्षित राजनीति में व्याप्त स्वार्थ की सडांध अनुभव किया जा सकता है। 'अनुभूति के स्वर' काव्यकृति से ही आभास होता है कि यह कृति पूर्णरूप से स्वानुभूति पर ही आधारित है। जिसका सबसे सटीक उदाहरण इस दोहा से व्यक्त हो जाता है। यथा-

''माई को मम्मी कहें, कहे पिता को 'डेड'।

नाम स्वदेशी छोड़कर, लेत विदेशी 'मेड' ॥''[15]

'व्यथित'जी ने जहाँ गाँधी, आज़ादी या धरती के प्रति अपना मंतव्य व्यक्त किया है, वहाँ पूर्वाग्रह भी सामने आता है। 'गाँधीजी' सर्ग में व्यथित जी कहते हैं-

''गाँधी तेरा नाम ले, करते सभी बवाल ।

सत्य, अहिंसा, शान्ति की, बुझने लगी मशाल॥''[16]

महात्मा गाँधीजी के सैद्धान्तिक मूल्यों को व्यक्त करते हुए 'व्यथित'जी ने लिखा है -

''सकल विश्व कल्याण का, खादी पावन मंत्र।

जयति जगत, जय विश्व का, चलो बनायें तंत्र ॥''[17]

इस प्रकार कवि आज़ादी के संदर्भ में कवि ने जीवन की कटू अनुभूतियों को बड़े ही सहज ढंग से व्यक्त किया है-

''आज़ादी क्या चीज है, समझे अभी न गाँव ।

डूब रही मझधार में, इसीलिये है नाँव ॥''[18]

कवि जयसिंह 'व्यथित'जी स्वयं अपनी अन्तर्व्यथा को प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं कि-

''व्यथा व्यथित जाने वही, सहे धूप और छाँव।

दशा देख विह्वल बने, दौड़े नंगे पाँव ॥''[19]

स्वयं की पीड़ा को आत्मसात् करता हुआ कवि अंतर्मन का सत्यापन उद्घाटित करता हुआ कहता है-

''दुख तो मेरा यार है, कैसे छोड़ूँ साथ ।

रहता हरदम पास में, लिये हाथ में हाथ ॥''[20]

इसी तरह एक दुसरा दोहा देखिए-

''सुख-दुख जन्मे साथ हैं, जैसे दिन और रात।

किसको कैसे छोड़ दूँ, कैसे मारुँ लात ॥''[21]

'अनुभूति के स्वर' दोहा-काव्य संकलन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि का एक सौम्य किन्तु विद्रोही व्यक्तित्व है। जिसके कारण उनके उद्बोधन में शांति की सौम्य सलिलता मंदाकिनी भी प्रवाहित है तो उद्दाम् एवं भीषण गर्जना के साथ हलचल मचा देनेवाला एक विशाल सागर भी है। जो इनके ताल एवं लय उतरता-चढ़ता अपना आक्रोश व्यक्त करता है।

'अनुभूति के स्वर' में डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अपनी सशक्त लेखनी का जादू दिखाया है। कई एक प्रकाशित पुस्तकें काव्य के विविध रूपों की उनकी पकड़ का आईना है। अन्य रचनाओं के द्वारा आपने छन्द-शास्त्र पर भी अपनी पकड़ का परिचय दिया है जिसका ठोस सबूत 'अनुभूति के स्वर' के द्वारा दे दिया है। इस पुस्तक में कवि ने दोहें जैसे छंद को लेकर अपनी काव्य-कला पर एक विशिष्ट मुहर लगाई है साथ ही सदियों से चली आ रही 'सतसई परंपरा' के साथ अपना नाम जोड़ दिया है। इस कृति का शीर्षक **'अनुभूति के स्वर'** देकर अपने इस नये आयाम को

अधिक स्पष्ट कर दिया है।

लंबे-लंबे परिच्छेदों में शब्दों की भरमार और तर्क-वितर्क से भरे आलेखों में शोध-ग्रंथों में, तार्किक विवेचनों में जो विचार, भाव व्यक्त किये जाते है उन्हें कविता के माध्यम से अति संक्षिप्त रूप में, कुछ कम शब्दों का उपयोग कर कवि पाठक के दिलो दिमाग़ को छू लेता है।

कवि ने अपनी इस सतसई में पर्यावरण जैसे विषय को लेकर अच्छे-खासे 82 दोहे लिखकर अपनी आधुनिक विचारधारा और समसामायिक समस्या के प्रति अपनी जागरूक दृष्टि का बेजोड़ परिचय दे दिया है। इसी प्रकार गीता का उत्तमोत्तम सार **'कर्मण्ये राधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।'** को अपने 'श्रम' शीर्षक से लिखे दोहों में स्पष्ट किया है। 'गरीबी' आज हमारे देश का सबसे बड़ा अभिशाप बन गई है उसको लेकर भी कवि चुप नहीं रहा।

अंत में 'टामी' और 'रैन बसेरा' जो कवि के दिल की सन्तानें हैं, उसके प्रति अपना प्रेम व्यक्त करना नहीं भूले। महादेवी वर्मा भी कहाँ भूल पायी। 'रैन बसेरा' कवि की हिन्दी साहित्य के प्रति सद्भावना का प्रतिक है। देश के कोने-कोने में पहुँच चुके 'रैन बसेरा' में इसी तरह कोने में पड़े अज्ञात रचनाकर्मियों को ढूँढ-ढूँढकर ले आते हैं और अपने 'रैन बसेरा' के माध्यम से प्रोत्साहित करते, घर-घर पहुँचाते हैं।

संदर्भ-सूची

1) प्रधान संपा.-कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/146

2) प्रधान संपा.-कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/146

3) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-21

4) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-18

5) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-70

6) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-29

7) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-73

8) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-73

9) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-72

10) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-72

11) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-75

12) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-21

13) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-21

14) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-20

15) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-62

16) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-64

17) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-64

18) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-65

19) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-51

20) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-50

21) डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी -अनुभूति के स्वर, पृष्ठ-50

''दलितों का मसीहा''(प्रबंध-काव्य)

'दलितों का मसीहा' व्यथित जी द्वारा रचित हिन्दी और गुजराती भाषा में एक प्रबन्ध-काव्य है। प्रबन्ध-काव्य के माध्यम से दलितों के प्रति व्यक्त किये गये विचार वास्तव में उन लोगों के लिए है जो कि निम्न जातियाँ है और होगी। इस काव्य में 'व्यथित'जी ने डॉ. बी. आर. आम्बेड़कर को दलितों का **''मसीहा''** माना है। जिसके पीछे किसी वर्ग विशेष नहीं बल्कि जाति विशेष को प्रधानता दी गयी है।

प्रस्तुत कृति में डॉ. आम्बेड़कर के जीवन से लेकर मृत्यु पर्यन्त की समस्त घटनाओं को व्यथित जी ने व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। कुल '352' पदों में रचित यह कृति आम्बेड़कर के सांगो पांग वर्णन करती है। आज तक डॉ. आम्बेड़कर को लेकर बहुत सारी रचनाएँ प्रकाशित हुई लेकिन काव्य रूप में प्रकाशित यह कृति संभवत् व्यथित जी का प्रथम प्रयास कहा जा सकता है। सभी रचनाएँ केवल किसी एक ही भाषा में न होकर हिन्दी, गुजराती, मराठी, सिन्धी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के माध्यम से गद्य रूप में रचनाकारों ने इनकी प्रतिभा को व्यक्त किया है। निश्चित रुप से यह कृति इनके जीवन की एक बेजोड़ कृति कही जा सकती है।

वैसे भी साहित्य के क्षेत्र में 'दलित साहित्य'जैसी विधा को कुछ साहित्यकारों ने अपनी रचना का मुख्य आधार बना लिया है। जिसका प्रचलन लगभग सन् 1960 से 1970 के बाद ज्यादातर दिखाई देता है। वर्तमान समय में सुमनाक्षर राजेन्द्र यादव आदि इसक्षेत्र में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। उसी परम्परा का निर्वाह व्यथित जी ने आम्बेड़कर को केन्द्र मे यह कृति संभवत: लिखी है। चूंकि डॉ. बी. आर. आम्बेड़कर स्वयं एक दलित परिवार में पैदा हुए थे। जिसकी अनुभूति उन्होंने की और समाज से इसको दूर करने का बीड़ा उठाया। स्वयं व्यथित जी का यह मानना है कि सादियों पहलें जो कार्य महात्मा बुद्ध ने किया था वही कार्य आधुनिक युग में डॉ. बी.

आर. आम्बेड़कर साहेब ने किया है।

जैसा कि सर्व विदित है किसी भी कार्य को नवीन रूप में प्रारम्भ करने से लेकर अन्त तक व्यकित को विभिन्न प्रकार की कठिनाईयाँ से गुजरना पड़ता है। ठीक इसी प्रकार डॉ. आम्बेड़कर ने यह बीड़ा तो उठाया लेकिन समस्याएँ बचपन से ही शुरू हो जिसका संकेत इस दोहे में मिलता है-

''छोटी उमर कष्ट बहुतेरे, काम-क्रोध को जीता था।

छुआ छूत का जहर भयंकर, शंकर जैसे पीता था ॥''[1]

तत्युगीन समाज में प्रचलित छुआ-छूत जैसी मुख्य समस्या को इन्होंने बचपन में पहली बार महसूस किया जब इन्हें विद्यालय में पीछे बैठाया जाता था। उसी समय इन्होंने माँ से अवर्ण और सवर्ण के भेद को पूछा था -

वे सवर्ण हम हेय वर्ण है।

उनका अपना जोड़ नही ॥''[2]

एक और दोहा इसी के संदर्भ में प्रस्तुत है-

''अवर्ण सवर्ण में भेद कहाँ क्या ?

समझा दे तू माई ॥''[3]

तब से लेकर जीवनोपरान्त इसी मुख्य समस्या को केन्द्र में रखकर समाज से इस समस्या को दूर करने का प्रयास करते रहे। इसी सम्पूर्ण घटना को डॉ. 'व्यथित'जी ने काव्य रूप में व्यक्त किया है। जिसका विवेचन हम अपने शोध में यथोचित रूपेण आगे कर रहे हैं।

श्रीमती शशिकला त्रिपाठी का कथन है कि ''डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित कृति 'दलितों का मसीहा' ऐतिहासिक दस्तावेज होते हुए भी आधुनिक परिप्रेक्ष्य

में नवीनतम देन कही जा सकती है। व्यथित जी आधुनिक काल के प्रगतिशील विचार धारा के कवि माने जाते हैं। कवि की अनुभूत चेतना उसकी रचना को जीवन्त बनाती है और वह तभी सम्भव होता है जब रचनाकार उस जीवन को जी चुका होता है।

आधुनिक युग में भी दलितोद्धार की आवश्यकता बनी हुई है। इस दृष्टि से 'दलितों का मसीहा' आज भी उतनी ही सामाजिक यथार्थ की कृति है जितना पहले थी। उसका महत्व अब और भी बढ गया है। 'दलितों का मसीहा' कृति आद्योपांत पढ़ने के पश्चात् उसे बार-बार पढ़ने की इच्छा होती है। कहा जाता है कि समुद्र मंथन से जो विष निकला था, उसे शंकर जी पी गए थे। अन्यथा सारा जगत विषैला बन जाता। गरल को पी जाने के लिए अर्थात् समाज में व्याप्त, प्रदूषण, आत्याचार, दुराचार, अन्याय आदि को समाप्त करने के लिए बार-बार 'दलितों का मसीहा' पढ़ने की आवश्यकता प्रतीत होती है क्योंकि अल्पायु में ही आम्बेड़कर जी ने समाज की विषैली बुराईयों को दूर करने के लए कमर कस ली थी। उस सत्य को, जो आज भी समाज का सत्य माना जा सकता है, व्यथित जी ने अपनी प्रगतिशील ओजस्वी शैली में अभिव्यक्त किया है-

छोटी उमर कष्ट बहुतेरे, काम क्रोध को जीता था ।

छुआ छूत का जहर भयंकर, शंकर जैसे पीता था ।।''[4]

डॉ. बी. आर. आम्बेड़कर विषरूपी कामक्रोध पी चुके थे। आम्बेड़कर जी छुआ-छूत जैसे सामाजिक भय को दूर करने के लिए कमर कस चुके थे। दर असल पहले से ही छुआ छूत का जहर जो दलित समाज में व्याप्त था, वह आज भी कम नहीं हुआ। इसलिए 'दलितों का मसीहा' कृति को दलित चेतना जगाने वाली महत्वपूर्ण कृति कहा जा सकता है।

डॉ. भीमराव आम्बेड़कर भारत से लंदन गए और वहाँ बैरिस्टरी की परीक्षा पास

कर पुन:भारत लौट आए। उन्होंने दलित प्रजा के उद्धार के लिए विद्यालय खोले तथा उनके उत्थान के लिए आजीवन संघर्ष किया। आज भी समाज और सरकार शिक्षित बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि आज भी दलित समाज के लोग पिछड़े और अनपढ़ हैं। 'व्यथित'जी निम्नलिखित पद से दलित प्रजा को सुशिक्षित करके आगे लाने की आवश्यकता बताते हुए लिखते हैं कि-

सुन्दर उसका मंत्र यही था, घर-घर दीप जलाओ सब।

बिना पढ़े उद्धार नहीं है, विद्या गले लगाओ सब ॥''[5]

डॉ. बी. आर. आम्बेड़कर साहब सही माने में 'दलितों का मसीहा' बनने की सामर्थ्य रखते हैं। डॉ. जयसिंह जी ने उस समाजोद्धारक, चेतनावादी व्यक्तित्व को इस 'दलितों का मसीहा' कृति के माध्यम से आधुनिक परिप्रेक्ष्य में ला खड़ा किया है। आज हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि अन्तराष्ट्रीय दरजा मिला है, उसमें डॉ. बी. आर. आम्बेड़कर की अह्म भूमिका रही है। हिन्दी भाषा हिन्दुस्तान की जनसंपर्क की भाषा है। हिन्दी ही हम हिन्दूस्तानीओं को एक सूत्र में बाँध सकती है -

''भाषाएँ सब अपनी-अपनी, देश एक कहलाएगा ।

हिन्दी होगी देश की भाषा, ध्वज अपना लहरायेगा ॥''[6]

मेरी दृष्टि से 'दलितों का मसीहा' कृति सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और राष्ट्रीय एकता की स्थापना दृष्टि से अत्याधुनिक कही जा सकती है। यह अतीत और वर्तमान परिस्थितियों को जोड़ती है। दलितों, शोषितों, पिछडों और पीड़ितों को वही समझ सकता है, जिसने उनके जीवन को बहुत ही करीब से देखा और परखा हो।

दलितों और शोषितों को देखकर डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का हृदय करुणा से भर जाता है। कवि को दलितों के बीच रहकर सेवा करने का अवसर प्राप्त हो चुका है अत: वे अपने अनुभवों के द्वारा गरीबों की दशा से भलिभांति परिचित हैं। इसलिए

दलित चेतना सीर्फ आम्बेड़कर कालीन-यर्थाथ न होकर व्यथित कालीन अनुभव भी हो सकता है। खुद के अनुभवों के आधार पर ही 'व्यथित'जी इस रचना को सुदृढ़, समाजोपयोगी एवं राष्ट्रीय बना पाता है। **इसी लिए तो व्यथितजी लिखते हैं-**

"मिलता सबको प्यार भीम का, सबको अपना माने था ।

दलित-जनों के दिल की पीड़ा, अनुभव से पहिचाने था॥"[7]

इसी संदर्भ में एक और पद देखिए-

"श्रम की पूजा दिलदिमाग से, भीम निरंतर करता था ।

श्रमिक जगत के उत्पीड़न का, घाव सभी वह भरता था॥"[8]

उपर्युक्त दोहा में डॉ. व्यथित जी कहना चाहते हैं कि आज लोग श्रम करने से कतराते हैं, वहीं भीम राव आम्बेड़कर निरन्तर परिश्रम करते रहते थे। इससे व्यथित जी यह बोध कराना चाहतें हैं कि बिना परिश्रम से कोई भी सफलता हासिल नहीं हो सकती।

आगे क्रमश: बढ़ाते हुए **डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी कहते हैं कि** "कोई भी इतिहास पूर्णतया समाप्त नहीं हो जाता। इस कृति का महान उद्देश्य है कि अम्बेड़कर के इतिहास को आगे बढ़ाया जाय। इसी संदर्भ में निम्नलिखित दोहा के माध्यम से मसझाते हुए लिखते हैं-

मचा हुआ कोहराम गजब था, दिग दिगन्त थर्राया था ।

दलितों का हो गया मसीहा, क्रान्ति नई जो लाया था ॥"[9]

इसी संदर्भ में एक और दोहा देखिए-

"पूर्ण हुआ इतिहास अरे क्या, पूर्ण विराम लगाना है।

पथ के उसकी क्रांति ज्योति को, आगे हमें बढ़ाना है ॥"[10]

उपर्युक्त दोहा से ज्ञात होता है कि क्रांतिकारी हृदय रखने वाले 'व्यथित'जी का ऐसा मानना है कि आज डॉ. आम्बेड़कर भले ही न हों परन्तु दलितों का मसीहा अभी गया नहीं है। उनके सन्देश को हमें आज भी जीवित रखना है।

डॉ. रामचरण शर्मा का कथन है कि -''कविवर जयसिंह 'व्यथित'जी 'दलितों का मसीहा' प्रबन्ध-काव्य लिखकर वास्तव ने डॉ. भीम राव आम्बेड़कर के कर्मयोग की गीता का काव्यमय गुणगान किया है। इस प्रकार का यह एक मात्र प्रबन्ध-काव्य है। जो व्यथित जी की लेखनी से ही संभव था। कवि ने एक अछूते विषय पर प्रबन्ध-काव्य लिखने का प्रशंसनीय प्रयास किया। कवि ने डॉ. आम्बेड़कर को करुणा का स्वामी प्रतिस्थापित कर मानवीय संवेदना, दया, प्रेम, सहिष्णुता जैसे मानवीय मूल्यों तथा आदर्शों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। उन्होंने यह भी स्थापित किया है कि मनुष्य जन्म, जाति या वर्ण से नहीं, कर्म से महान बनता है।

सुनकर हाहाकार जगत का, हंस छोड़ माँ धाई थी।

भीमराव के कर्मयोग की, गीता घर-घर गाई थी ॥''[11]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने जिस तन्मयता से 'दलितों का मसीहा'प्रबन्ध-काव्य की रचना की है। उस प्रबन्ध-काव्य में 'व्यथित'जी का शक्तिशाली प्रतिभा के दर्शन होते है। कवि की खुद की करूणा, दया, मानव-प्रेम उस काव्य में उजागर हुए हैं। इसमें ऐसा लगता है कि कवि स्वयं इन भावों के सागर हैं। 'व्यथित'जी का हृदय प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य में उमड़ पड़ा है। इसी कारण से 'दलीतों का मसीहा' प्रबन्ध-काव्य अत्यंत सफल और प्रभावशाली बन पड़ा है। दलित-चेतना की दिशा में 'दलितों का मसीहा' प्रबन्ध काव्य सीमाचिन्ह है। डॉ. 'व्यथित'जी के हृदय में जो भाव-धारा प्रगट हुई है, उसका एक उदाहरण प्रस्तुत है-

''मानव-मानव एक जगत में, एक रक्त की है धारा ।

एक हृदय की धड़कन सब में, एक जगत है उजियारा ॥''[12]

नि:संदेह डॉ. भीमराव आम्बेड़कर के माध्यम से 'व्यथित'जी ने अपने मनोभावों को और अपने दृंढ़ संकल्प की घोषण करते हुए लिखा है-

''दुर्बल-निर्बल पीड़ित जितने, सबको गले लगाऊँगा।

सबका हित वह अपना होगा, ऐसा दीप जलाऊँगा ॥''[13]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी बाबा साहब आम्बेड़कर के समस्त जीवन प्रसंग पुष्पों को एक सूत्र में बाँधकर उन्हें एक सुन्दर पुष्पमाला का स्वरूप प्रदान किया है। जो कवि की काव्य कला का अनन्यतम प्रमाण है। 'दलितों का मसीहा' एक प्रबन्ध काव्य है और इसमें प्रबन्ध काव्य की सभी विशेषताएँ विद्यामान हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य डॉ. बी. आर्. अम्बेड़कर के जीवन वृतों की शृंखला में बँधा हुआ क्रमश: काव्य है। डॉ. आम्बेड़कर का जन्म तब हुआ था जब देश में चारों तरफ छुआ छूत शोषण और अत्याचार अत्यंत विषाक्त रूप में फैले हुए थे। इसी प्रसंग को डॉ. बी. आर. आम्बेड़कर की माता इस प्रकार व्यक्त करती है-

''कहती दलितों जागो-जागो, भीम जगाने आया है।

छुआ छूत की गाड़ी मेख पर, प्रश्न-चिन्ह बन छाया है ॥''[14]

डॉ. बी. आर. आम्बेड़कर के जीवन का महामंत्र विश्व को कर्म प्रधान बनाना था और जन्म प्रधान व्यवस्था को समाप्त करना था। इसी संदर्भ में **डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी** ने उन्हें कलियुग की करूणा का स्वामी और महात्मा **बुद्ध कहते हुए लिखते हैं-**

कर्म-प्रधान विश्व करि राखा, जीवन-मंत्र बनाया था।

जन्म-प्रधान व्यवस्था को, सच पैरों से ठुकराया था।

कलियुग की करूणा का स्वामी, भीम बुद्ध बन आया था ॥''[15]

बी. आर. आम्बेड़कर की शैशव अवस्था की दारूण दशा का कवि ने मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। माता की बात को सुनकर भीमराव ने कहा कि यह सब प्रपंच है क्योंकि हममें और उनमें कोई भेद नहीं है। भीमराव आम्बेड़कर ने अपने पिता से यह मंत्र पाया था कि ईश्वर सबका एक ही है। **डॉ. 'व्यथित'जी का कथन है–**

''ईश्वर यदि है एक सृष्टि का, बालक यदि है जग–सारा।

फिर कैसी यह भेद–भरम की, बनी यहाँ पर कारा ॥''[16]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने बहुत ही स्पष्ट बात कह दी है की समाज में वर्ण भेद भाव की जो धारा बह रही हैं, वह ईश्वर सृजित नहीं परन्तु मानव सृजित है। तथा सभी का रक्त एक सा ही है। सबके हृदय में एक ही धड़कन है फिर भी आपस में भेद-भाव कैसा ?

''मानव–मानव एक जगत में, एक रक्त की है धारा।

एक हृदय की धड़कन सब में, एक जगत है उजियारा॥''[17]

इसी संदर्भ में एक और दोहा देखिए-

अवर्ण–सवर्ण में भेद कहाँ क्या? समझा दे तू माई रे।

क्या समझाऊँ कहता तू जो, उसमें ही सच पाई रे ॥''[18]

डॉ. आम्बेड़कर को माता जी ने बताया कि जो हमसे घृणा करता है, वह मनुष्य नहीं दानव है। माता की इन्हीं बातों से प्रेरित होकर डॉ. बी. आर. आम्बेड़कर में उत्साह पैदा हुआ और वे विभिन्न तर्क-वितर्कों के आधार पर छुआ-छूत, जाति-पाति, ऊँच-नीच के भेदभाव को मिटाने के प्रयास में लग गये। इसी समय आम्बेड़कर को अनुभव हुआ-

''जहर भयंकर छुआ–छूत का, शंकर जैसे घूँटा था।

जिसकी व्यथा स्वयं वे जाने, खण्ड–खण्ड दिल टूटा था ॥''[20]

डॉ. आम्बेड़कर प्रतिज्ञा करने के बाद उन्होंने दलितों को जाग्रत किया कि जागो और स्वयं को पहचानों, समाज की जो दुर्व्यवस्था है उसको निकाल दो क्योंकि तुमसे बढ़कर कोई बड़ा नहीं। तुम स्वयं दुनिया को ललकारो। **आम्बेड़कर जी ने यह भी कहा था कि–**

''समता के हित जीना जग में, समता के हित मरना है ।
समता सगा महोदय अपना, उसके ही पथ चलना है ॥''[21]

दलितों का मसीहा डॉ. भीम राव आम्बेड़कर ने जो भी प्रतिज्ञा की वह वास्तव में व्यथित जी की मानवीय समदृष्टि का द्योतक है-

''दलितों के जो हित में होगा, धर्म वहीं अपनाऊँगा ।
किन्तु प्रतिज्ञा इतनी मेरी, हिन्दू नहीं कहलाऊँगा ॥''[22]

हिन्दू धर्म में फैले हुए छुत-अछुत, अत्याचार, जाति-पाति, ऊँच-नीच आदि कारणो के वजह से डॉ. बी. आर. आम्बेड़कर साहब ने बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया था। इस प्रसंग को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करते हुए **'व्यथित'जी ने लिखा है–**

''सबका ऐसा प्रेम असीमित, करूणाकर लहराया था ।
हुआ गदगदित दृश्य देखकर, बोल नहीं कुछ पाया था ।
कलियुग की करूणा का स्वामी, भीम बुद्ध बन आया था ॥''[23]

डॉ. भीम राव आम्बेड़कर के बौद्ध धर्म स्वीकार करने के पीछे कौन सा भाव छुपा था। डॉ. जयसिंह'व्यथित'जी ने इस घटना की गहराई तक मनोवैज्ञानिक ढंग से निरूपण करते हुए लिखतें हैं-

''बौद्ध धर्म ही माफिक मुझको, उसको ही अपनाऊँगा।

उसके तत्व गूढ़ है जितने, जन-जन तक पहुँचाऊँगा॥''[24]

इस प्रकार यह सम्पूर्ण कृति 'दलितों का मसीहा' निश्चित रूप से दलितों के उद्धार हेतु की गयी रचना है। जिन्होंने छुआ-छूत को समाप्त करने का बीड़ा उठाया और जीवनोपरान्त उससे जूझते रहे तथा जिसका लाभ भी उनको प्राप्त हुआ।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने इस प्रबन्ध काव्य की रचना **पद्म भूषण डॉ. धनञ्जयकीर के अंग्रेजी ग्रंथ ''डॉ. आम्बेड़कर लाइफ एण्ड मिशन'' की गुजराती आवृति -''डॉ. आम्बेड़कर जीवन अने कार्य''** के आधार पर की है। व्यथित जी ने इस प्रबन्ध-काव्य को बुद्ध की कक्षा में रखकर दलितों के भगवान के रूप में देखने का प्रयत्न किया है। इसीलिए अनेक जगहों पर मानव वाचक का प्रयोग न करके एक वचन का प्रयोग सभानतापूर्वक किया है। इतना ही नहीं बल्कि कहीं-कहीं पर 'व्यथित'जी अपनी कल्पना के पंखों पर भी उड़ने का साहस किया है। उदाहरण के तौर पर जैसे माता-पुत्र का बचपन का संवाद यह 'व्यथित'जी की कल्पना की उपज है। फिर भी इस प्रबन्ध-काव्य में बाबा साहब के ऐतिहासिक प्रसंगों और उनकी वैचारिक पृष्ठभूमि की यथार्थता को स्पष्ट रूप से दर्शाने का प्रयत्न किया है।

डॉ. बी. आर आम्बेड़कर साहब का जीवन अगरबती जैसे था, जो स्वयं जलकर औरों को सुवासित करती है। देखा जाय तो सच्चे अर्थो में वे एक महान कर्म योद्धा थें। डॉ. बी. आर. आम्बेड़कर साहब विषम परिस्थितियों में भी वह कर्मवीर हिमालय की तरह अड़िग रहकर सागर जैसी गंभीरता के साथ समता का मार्ग प्रशस्त किया है। उनको 'भारत रत्न' से भी विभूषित किया गया है। उनका समस्त जीवन- चिन्तन दलितों का उद्धार की मानसिक चेतना से जुड़ा हुआ था। इसीलिए डॉ. 'व्यथित'जी ने इस पुस्तक के मुख पृष्ठ पर आम्बेड़कर साहब का फोटो का कवरेज लिया है और पुस्तक का नाम **'दलितों का मसीहा'** रखा है।

संदर्भ-सूची

1) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-03

2) प्रधान संपा.-कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/15

3) प्रधान संपा.-कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/20

4) प्रधान संपा.-कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/32

5) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-24

6) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-52

7) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-47

8) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-48

9) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-87

10) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-87

11) प्रधान संपा.-कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-डॉ. जयसिंह 'व्यथिज'जी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/34

12) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-05

13) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-15

14) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-01

15) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-02

16) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-05

17) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-05

18) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-05

19) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-10
20) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-13
21) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-17
22) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-44
23) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-78
24) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-दलितों का मसीहा, पृष्ठ-67

''आर्तनाद''-(खण्ड-काव्य)

'आर्तनाद' खण्ड-काव्य डॉ. 'व्यथित'जी द्वारा रचित एक विशिष्ट कृति है। इनमें तीन सर्ग है। प्रथम खण्ड 'हुंकार', द्वितीय-खण्ड 'चिन्तन' और तृतीय खण्ड 'समन्वय' नाम से जाना जाता है। प्रथम सर्ग में रावणी छाया ओर छोर व्याप्त हो चुकी है। रावण युग को चबाता चला जा रहा है। रावण का विरोध करनेवाला एक मात्र राम कहाँ छिपा है ? आज जन-जन में रावणी आंतक की सूक्ष्मात्मा कहर ढा रही है। अनेक सूपनखायें बिना नाक कटी घुम रही हैं। कवि का अन्तर्मन अपना एक विशिष्ट चिन्तन रखता है। वह अपने हृदय में वेदना लिए है कुढ़न संजोये हैं। वह वेदना यह है कि राम-लक्ष्मण अयोध्या से बनवास पर आये, यहाँ आकर उन्होंने एक व्यवस्था पर कहर ढाई। रावण की बहन सुपनखा अपने अनुकुल रूप अवस्था आदि का निरीक्षण करके उसका मन हुआ कि वह ऐसे पुरुष की संगिनी बने। सूपनखा ने पूछा ही तो था? राम-लक्ष्मण दोनों भाई मिलकर उसे व्यर्थ में ही हैरान करते हैं। नाक-कान काटकर तो राम-लक्ष्मण ने और ही बुरा किया। **डॉ. 'व्यथित'जी के शब्दों में –**

> **''पूछा उसने सिर्फ यही, क्या शादी तुम्हें बनानी है?**
> **उत्तर में बस हाँ या ना था, हुई कहाँ मनमानी ॥''**[1]

इसी संदर्भ में एक और दोहा देखिए-

> **''बात नहीं यदि उसकी भायी, करना था इनकार तुम्हें।**
> **अबला नारि पराई पर क्या, शोभा यह व्यवहार तुम्हें ॥ ''**[2]

डॉ. 'व्यथित'जी ने इस खण्ड-काव्य में इस कर्म की घोर निन्दा की है। कवि ने राम को यहाँ पूर्णरूप से असफल देखा है। यहाँ असफल राजनीति का साक्षात् स्वरूप पाया है। उन्हें धिक्कारते हुए 'व्यथित'जी ने उनकी निन्दा भी की है। कविवर

ने पूछा है कि ऐसा कुकर्म करने की प्रेरणा किस नीतिशास्त्र, वेद व अन्य धर्मग्रंथ में दिया है? **इसी संदर्भ में 'व्यथित'जी लिखते हैं–**

कौन वेद किस नीतिशास्त्र ने, ऐसा निम्न विधान किया।
जिस के बल बूते पर तुमने, नीचा सर संधान किया ॥ ''[3]

इसी संदर्भ में दूसरा एक और दोहा देखिए-

''नीतिशास्त्र अज्ञान तुम्हारा, जिससे यह दुष्कर्म किया।
जिसका खायें उसका खोदें, इसमें क्या सत्कर्म किया॥''[4]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने उस रामत्व की निन्दा की है जिसने विवाह के प्रस्ताव मात्र से नाक-कान काट लिया है। दूसरी तरफ रावणी प्रवृति जिसकी समाज में निन्दा होती है वह कितना सही मिला। यहाँ पर कविवर ने राम का विकृत स्वरूप प्रकट किया है। रावण की प्रवृति बदला लेने पर देखने को मिलती है। वह सीता माता को बड़े सम्मान के साथ अशोक वाटिका में प्रतिष्ठित करता है। देखा जाय तो रावण भी बल पूर्वक सीता का नाक-कान काट सकता था, अनेक दुर्व्यवहार कर सकता था। **डॉ. 'व्यथित'जी का कथन रावण के शब्दों में प्रस्तुत है–**

''हर कर उन्हें मान से रक्खा, मनमानी कर सकता था।
नहीं किया यह नीति हमारी, दुसह दुक्ख दे सकता था ॥''[5]

इसी संदर्भ में एक दूसरा दोहा प्रस्तुत है-

''सीता–हरण हुआ किस कारण, इसका क्यों उल्लेख नहीं।
उल्लू अपना सीधा हो बस, बात यही सविशेष रही ॥''[6]

इस खण्ड-काव्य में रावण अपना अवगुण खुद ही स्वीकार करता है। वह हीन भाव को सदा सर्वदा दबाने का प्रयास किया है। किन्तु वह झुकने में अभ्यस्त नहीं

है। रावण खुद ही कहता है-

''मैं तो शासक शक्ति समर्पित, झुकने का अभ्यास नहीं।
बल-पौरुष का गर्व मुझे जो, दीन भाव स्वीकार्य नहीं ॥''[7]

इसी संदर्भ में एक और दोहा देखिए-

''यही एक बस अवगुण मेरा, जिस से मेरी हार हुई।
और यही बस सद्‌गुण उनका, जिससे उनकी जीत हुई॥''[8]

सच तो यह है कि रचनाकार ने रामायण के पात्रों के द्वारा समसामयिक जीवन की विसंगतियों को खूब उभारा है। डॉ. 'व्यथित' जी ने अपनी सहज कल्पना और प्रतिभा के बल पर राम और रावण को अपने पौराणिक सन्दर्भों से अलग-अलग ढ़ंग में दर्शाया है। कविवर की कल्पना बड़ी मनोहर है। जिसने रावण को एक प्रबल शक्ति के रूप में वर्णन किया है। डॉ. 'व्यथित'जी ने इस संदर्भ में पंक्तियों की कल्पना का स्वरूप प्रकट करते हुए लिखा है -

''त्रेता युग का रावण हूँ मैं, दिखते कहीं न राम मुझे।
पथराई हैं आंखें मेरी, लगता जीवन दीप बुझे॥''[9]

इसी संदर्भ एक और उदाहरण द्रष्टाव्य है-

''देख रहा सब बदतर मुझसे, फिर भी मनुज कहाते हैं।
काले कर्म, कमाई काली, पूजनीय बन जाते हैं ॥''[10]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी जिस प्रखर बुद्धिवादी चेतना और आधुनिक व्यवस्था का वर्णन किया है, सम्भवत: वही हमारे नैतिक पतन कारण है और इसे विद्वज्ञन सुधी साहित्यकार ही रोक लगा सकते है। भोगवादी प्रवृति की तृप्ति होती नहीं दिखाई देती है परंतु व्यास निरंतर बढ़ती ही जा रही है। इसी वजह से हमारा

जीवन और समाज असंतुलित होता जा रहा है। आज के समय में हम बाहरी चमक-दमक के आकर्षण और मोहपाश में जकड़कर खोखले हो जा रहे हैं। सृष्टिकर्ता ने सृष्टि को समन्वित करने के उद्देश्य से ही इसे द्वन्दमय बनाया है। दोनों में सन्तुलन होना चाहिए, असन्तुलन नहीं। इसी असन्तुलन की स्थिति में हमारा सामाजिक ढाँचा बिगड़ जाता है। इसीलिए इनमें समन्वय और सन्तुलन आवश्यक है जैसा कि डॉ. **'व्यथित' जी का कथन है–**

''राम और रावण का समन्वय आवश्यक है। नहीं तो समाज त्रिसंकु जैसा एकांगी एवं बेडौल बन जाएगा। जो समाज जीवन के अस्तित्व के लिए खतरा है। इसीलिए मैंने दो भिन्न शक्तियों के समन्वय की अनिवार्यता महसूस की है। यदि ऐसा हुआ तो विश्व शांति का बिगुल बजेगा और नवयुग का निर्माण होगा और तब कहीं जाकर 'आर्तनाद' का शमन संभव होगा। यही इस कृति का मध्य बिन्दु है।''[11]

राम और रावण का युद्ध धर्म और अर्धम का है परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में धर्म का स्वरूप बहुत ही विकृत हो चुका है। धर्म की आड़ में धर्म विपरीत आचरण करना शायद आज के धर्मावतारियों की रीति है। धर्म के नाम छदम धर्म के छद्म धर्म का प्रचलन की इस युग की विभीषिका है। रावण को माध्यम बनाकर इस पर प्रहार करना ही इस कृति का उद्देश्य है। सीता हरण को रावण का सबसे बड़ा दुर्ष्कम माना गया। इस तथ्य को रावण स्पष्ट करता है-

''सीता हरण हुआ किस कारण, इसका क्यों उल्लेख नहीं।
उल्लू अपना सीधा हो बस, बात यही सविशेष रही ॥''[12]

डॉ. रामबहादुर मिश्र का कथन है कि -''राम और रावण भारतीय साहित्य-संस्कृति, धर्म-दर्शन तथा पौराणिक आख्यानों के सर्वमान्य नायक और प्रतिनायक है। राम को सर्वत्र सत्य का प्रतीक और रावण को अन्याय का प्रतीत बताया गया

है। राम के अवतार का हेतु धर्म की हानि और असुरों के नायक रावण का संहार राम इसी लिए करतें वह धर्म की हानिकर रहा है। जब आज की परिस्थितियों में रावण की चर्चा होती है, तो हम बेधड़क कह देते हैं कि वर्तमान समय में समाज में सर्वत्र अनेकानेक रावण व्याप्त है। किन्तु कभी यह नहीं सोचते कि रावण की आसुरी वृत्ति में कहीं न कहीं सिद्धांतों और कर्तव्यों का पालन होता दिखाई देता है। किन्तु आज का समाज तो पूर्णत: कर्तव्यों और सिद्धांतों से परे हो चला है। 'आर्तनाद' के माध्यम से **डॉ. व्यथित'जी** सम्भवत: यही कहना चाहते हैं।

वस्तुत: यह समग्र सृष्टि ही द्वन्द्वमय है जैसा की **गोस्वामी जी ने लिखा है–**

सुख दु:ख पाप पुण्य दिन राती, साधु–असाधु सुजाति कुजाति।

दानव देव ऊँच अरुनीचू, अभिय हलाहल माहुर मीचू।।''[13]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की मान्यता है कि जब तक ईर्ष्या, अभिमान, अनैतिकता आदि आसुरी प्रवृत्तियों का त्याग नहीं किया जाएगा तब तक राम राज्य का सपना साकर नहीं हो सकता । यदि सभी लोग निर्विकार भाव से अपना कर्म करें, घर-घर में ज्ञान के ज्योत जलाए, प्रत्येक व्यक्ति राम के आदर्श को अपनाए, तभी राम राज्य स्थापित हो सकेगा। अन्यथा रावण इसी प्रकार पुनर्जीवन प्राप्त करता रहेगा।

''आर्तनाद'' में सर्व धर्म समभाव का संदेश निहित है। विश्व के सभी धर्म मावन कल्याण पर बल देते हैं, दुर्भाग्य से धर्मो के कल्याणकारी स्वरूप को विस्तृत कर दिया गया है। धर्म की कट्टरता मानव के अस्तित्व के लिए खतरा बन गई है। पूजा घरों में पुजारी, भक्त और धर्म के तथा कथित रक्षक तो है, पर भगवान का पता नहीं है। इसी संदर्भ में निम्नलीखित द्रष्टांत देखिए।–

''देखा मैंने मंदिर मस्जिद, गिरजा घर गुरुद्वारे हैं।
वहाँ कहीं भगवान नहीं, बस भक्त बड़े रखवारे हैं ॥''[14]

डॉ. वीरेन्द्रकुमार सिंह का कथन है कि ''डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के खण्ड काव्य 'आर्तनाद' में इसी युगीन समस्या को रेखांकित किया गया है। कविने अपनी अद्‌भूत कल्पना-शक्ति के द्वारा रावण नामक एक पौराणिक-चरित्र का सहारा लेकर भौतिकता की संवेदनहीन और अंधी दोड़ की विडम्बनात्मक परिणति का उद्‌घाटन किया है। युग-जीवन के सूक्ष्म अध्येता और भारतीय और भारतीयता के प्रबल पक्षधर डॉ. व्यथित जी ने रावण को नए संदर्भ देकर समकालीन अवसाद, पीड़ा, अनाचार एवं त्रासदी को भौतिकता का अनुषंगी घोषित किया है।''[15]

डॉ. वीरेन्द्र कुमार ठाकुर इसी संदर्भ में क्रमशः आगे लिखते हैं - ''मनुष्य के भीतर रावणत्व की प्रवृति प्रबल होती है। वह दुष्कर्म में आकंठ डूब जाता है जिसका आभ्यंतर रामत्व से सराबोर होता है वह महामानव बन जाता है। मनुष्य के भीतर राम और रावण दोनों बैठे हैं। राम सत्य, ईमान, पुण्य मर्यादा, दया, मानवता के प्रतीक हैं। राम केवल दशरथ के पुत्र अथवा अयोध्या के राजा ही नहीं हैं, राम तो एक गुण हैं, एक आर्दश हैं और मानव को आर्तनाद से मुक्ति दिलानेवाला वेरण्य मार्ग हैं। इसके विपरीत रावण अंधकार, पाप, असत्य, अन्याय, दानवता और भौतिकता का प्रतीक है। राम के बाणों से लंका के राजा का स्थूल शरीर तो नष्ट हो गया पर दानवी प्रवृत्ति का नाश नहीं हुआ, इसलिए रावण आज भी जीवित है। वह जीवित ही नहीं है बल्कि वर्तमान परिवेश में वह पहले से अधिक आततायी, निर्मम, बलशाली और आत्यचारी हो गया है। बीसवीं सदी के अंतिम काल-खण्ड में दानवता अट्टहास कर रही है, पापधर्मी प्रवृत्तियाँ सम्मानित हो रही हैं और मानवता के परखच्चे उड़ रहे हैं। भौतिकता ने सभी जीवन-मूल्यों को लील

लिया है, सामाजिक और नैतिक मूल्य धाराशायी हो गए हैं, अंधकार और अधिक घनीभूत हो गया है। लूट, भ्रष्टाचार, शोषण, हत्या, बलात्कार के कारण-चतुर्दिक हाहाकार मचा हुआ है और मानवता दम तोड़ रही है। इस भीषण माहौल में आज राम की पहले से अधिक आवश्यकता है।

चलो सभी हम ढूँढ निकालें, अपना प्यारा राम कहाँ।
काम सभी जो करता सत के, बैठा वह घनश्याम कहाँ॥''[17]

आज चारों तरफ रावण ही नज़र आता है। श्री राम मंदिरों में कैद कर दिए गए हैं। यदि देखा जाया तो सभी मनुष्य हैं किन्तु उनके कर्मों को देखकर तो दानवता भी शर्म से मुँह छिपा लेती है। हर साल रावण के पुतले जलाए जातें हैं परन्तु हर बार रावण फिर जी जाता हैं, वह भी नए-नए रूप में। । रावण तो अमर हो गया है, पर अब साधनों की शुद्धता पर ध्यान नहीं दीया जाता, साध्य ही प्रमुख हो गया है। लेकिन अपवित्र साधनों से प्राप्त साध्य सर्वजन हितकारी नहीं हो सकता। इसी संदर्भ दृष्टाव्य प्रस्तुत है-

''राजनीति या धर्मनीति हो, साधन ही की महिमा है।
शुद्ध नहीं हो साधन जिसका, उसकी क्या फिर गरिमा है॥''[17]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के प्रस्तुत काव्य में गाँधीजी के आदर्श, गौतम बुद्ध की करूणा और मानवता, गीता का निष्काम कर्मयोग, गोस्वामी तुलसीदास के राम राज्य की परिकल्पना, मार्क्स का शोषण मुक्त समाजवाद, कबीर का आडंबरहीन सरल जीवन-दर्शन और विनोबा-भावे का सर्वोदयवाद एक साथ सब कुछ इसमें समाहित है।

कविवर 'व्यथित'जी एक ऐसे विश्व के निर्माण का आकांक्षी है जिसमें दुःख, भय, शोषण, आतंक आदि नहीं हो। सभी मनुष्य जाति एक समान हों, सभी

सुशिक्षित हों, दैहिक, दैविक और भौतिक दु:खों से लोग त्रस्त नहीं हों। 'व्यथित' जी ऐसी विश्व-व्यवस्था को अभिलाषी हैं। जहाँ सत्य, करूणा, शांति तथा अहिंसा की सरिता लहराती हो। इन सभी को स्पष्ट करते हुए कवि लिखते हैं-

''सुन्दर विश्व सुशिक्षित जन-मन, कर्म सभी निष्पाप बनें।
ऊँच-नीच के भेद भश्म पर, भीषण मुष्टि प्रहार करें।।''[18]

इसी प्रकार-

''ऐसा विश्व बने फिर जिसमें, निर्भय सभी निवास करें।
शोषण मुक्त समाज की खातिर, मिलकर सभी प्रयास करें।।''[19]

समाज का विकृत रूप देखकर डॉ. 'व्यथित'जी को द्वितीय सर्ग में चिन्तन के लिए बाध्य हो जाना पड़ता है। वह राम राज्य से चलकर युगों-युगों को पार करता हुआ गाँधी युग में प्रवेश करता है। वह आधुनिक गाँधीवाद की बात करने के लिए कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टचार आदि की बात करने लगता है। डॉ. 'व्यथित'जी गाँधीजी के भिति चित्र पर भी संदेश व्यक्त करते हुए कहते हें-

''हर दफ्तर हर आफिस में तुम, लटक रहे हे गाँधी हो।
देखो अपनी हालत देखो भले रहे तुम आँधी हो ।।''[20]

इसी संदर्भ में एक और दृष्टान्त प्रस्तुत है-

''बना लूट का अन्तिम साधन, आज तुम्हारा नाम यहाँ।
शासन को बस नाम चाहिए, नहीं तुम्हारा काम यहाँ ।।''[21]

भारतीय संस्कृति के छिट फुट छीटों को डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी सहन करने में असमर्थ हो जाते है। समाज के दु:ख-दर्द तो कवि को प्रत्यक्ष पीड़ित करते ही हैं। पुजारियों की पूजा, देवार्चन के विविध आयाम कविवर को वैज्ञानिक

नहीं बल्कि ढोंग लगते हैं। व्यथित जी उन पर परुष शब्दों से प्रहार करते हुए लिखतें हैं -

"मन्दिर में ही बन्द इन्हें रख, बाहर नहीं निकालूँगा।
खाली थाली दिखा इन्हें फिर स्वयं भेट भर खाऊँगा॥"[22]

'आर्तनाद' खण्ड-काव्य के 'समन्वय' सर्ग में डॉ. 'व्यथित'जी ने भावना और बुद्धि, हृदय और मस्तिष्क, भौतिकता और आत्मिक विकास, स्थूल और सूक्ष्म के समन्वय से एक नए कल्याणकारी विश्व के निर्माण की आकांक्षा व्यक्त की है। कविवर ने रावण को भौतिकता और राम को नैतिकता का प्रतिक बतलाते हुए दोनों के सामंजस्य की वकालत करता है। जब भी बुद्धि और हृदय का समन्वय होगा तब विश्व-शांति का ध्वज लहराने लगेगा। नैतिकता से तो सभी परिचित हैं, किन्तु आधुनिक संसार के लिए नैतिकता अपरिचित-सी है। 'व्यथित'जी की मान्यता है कि जब बुद्धि और हृदय का समन्वय होगा तब विश्व में सद्भाव और प्रेम की गंगा लहराने लगेगी, भौतिक सुख की इच्छा समाप्त हो जाएगी, समता-मूलक मानवतावादी व्यवस्था का आविर्भाव होगा और **'सर्वे भवन्तु सुखिन:'** की आकांक्षा फलीभूत होगी। इसे स्पष्ट करते हुए **'व्यथित' जी लिखते हैं -**

"हाहाकार मिटेगा जग से, हरित-क्रांति ले आएगा।
विश्व-शांति का बिगुल बजेगा, क्षीर-सिन्धु लहराएगा॥"[23]

कवि भारतीय दर्शन विश्व की सभी वस्तुओं में ईश्वर की छाया देखता है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी ने भारतीय धर्म-दर्शन का संदेश इन पंक्तियों में प्रकट किया है -

"सब में राम-रहिम को देखें, सब में अपनी सूरत हैं।
गिरजा घर गुरुद्वारों में भी, दिखती सबकी मूरत है॥"[24]

समन्वय खण्ड-काव्य में कवि ने रावणी प्रवृतियाँ एकाकार हो जग का मार्ग-दर्शन करेंगी। कवि का लेखन सम्पूर्ण रूप से युग को पथ प्रदान करता है। अस्तु वह बधाई का पात्र है। दोनों एक सिक्के के दो पहलू से हैं। एक दूसरे का अस्तित्व युग के लिए अतिआवश्यक है। कविने यहाँ सत्य ही समझा हैं कि दोनो के ही मधुर मिलन से जग में होगा एक नया प्रकाश। कवि को पूर्ण विश्वास है कि राम-रावण के मिलन से -

''पापाचार मिटेगा जग से, पुनर्जागरण आयेगा।
गायेगा जग गीत प्रीत के, संशय विहग उड़ायेगा ।।''[25]

इसी प्रकार एक और पंक्ति देखिए-

''बाधा, विषय, विकार हृदय का अन्तर्मन धुल जायेगा।
स्वच्छ बनेगी मैली चादर, जीव जगत हरषायेगा ।।''[26]

विश्व की वर्तमान स्थिति को देखकर कवि निराश होता सा प्रतीत होने लगता है। वह राम राज्य की कल्पना को निराधार समझता है। उसे राम राज्य की किस परिभाषा ने आत्मसात कर रखा है, यह समझ पाने में कवि को कठिनाई हो रही है। कविवर अन्त में राम को ढूँढ निकालने वाले के लिए मूँह मागा धन तक देने की बात को भी ऊपर रखता है। वह रावण को जीता और राम को मरा देख रहा है। यह कवि की अपनी परम विशेषता है। मानसकार तुलसीदास ने तो जगती के कण-कण को राम मय देखा है। यद्यपि उन्हें युग संत्रास कम नहीं झेलना पड़ा तथापि उन्होनें लिखा है -

''सीया राम मय सब जग जानी करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ।।''[27]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की वैचारिक प्रौढ़ता इस रचना को और भी सशक्त

बना देती है। तीन सर्गों में विभाजित इस ग्रंथ में हुंकार, चिन्तन है और इन दोनों का अद्भूत समन्वय। राम और रावण की समन्वयात्मक शैली का कविवर ने बड़े ही मर्मपूर्ण ढ़ंग से कहा है-

''घट-घट में तो राम विराजे, घर-घर दिखाता रावण है।
दोनों का जब मधुर मिलन हो, तब समझो जग पावन है ॥''[28]

प्रत्येक मानव में ईश्वर का निवास है। इस लिए मानव की सेवा को ही प्रभु सेवा और सच्चा धर्म कहा गया है। मानव सेवा ही सभी धर्मों का सार है। किन्तु आधुनिक युग में असंतुलित विकास और विध्वंशकारी शक्तियों के कारण मानवता के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लग गया है, मनुष्यता क्षत-विक्षत हो गई है और सम्पूर्ण विश्व बारूद का भंडार गृह बन गई हैं। अपने अह की तुष्टि के लिए तथा दूसरों को भयाक्रंत करने के लिए एक से बढ़कर एक परमाणविक अस्त्र विकासित किए जा रहे है। यदि विश्व की इन विनाशकारी शक्तियों पर रोक नहीं लगाई गई तो धरती का विध्वंश अवश्यम्भावी हो जाएगा। ऐसा लगता है कि आज के जन मानस पर रावण बैठ गया है। **इसी संदर्भ में व्यथित जी लिखते हैं कि-**

''वर्तमान सब प्रदूषित, अंगारों पर बैठा है।
जन-मानस पर रावण छाया, अहम सभी का ऐंठा है ॥''[29]

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के कारण मानव-जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। आज मानव प्रकृति पर नियंत्रण कर लिया है, समय को अपने हथेली में कैद कर लिया है, वह कालजयी होने का दावा भी करने लगा है। विश्व में साधनों एवं सूचना तंत्र के क्रांतिकारी विकास के कारण संसार सिमटकर छोटा हो रहा है। विश्व-ग्राम की बात होने लगी है। विज्ञान ने मानव सुविधा के अनेक उपकरण दिए हैं किन्तु विकास के उच्चशिखर पर पहुँचकर मानव का जीवनोल्लास

नष्ट हो गया है। हमारे पास सब कुछ होने के बावजूद हम दु:खी, बेचैनी और हताश हैं। दूसरों का दु:ख-दर्द सुनने के लिए हमारे पास समय नहीं है। फलत: हम भीड़ में अकेले हो गए है।

इसिलिए 'आर्तनाद' में डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी संतुलित विकास पर अधिक बल दिए है। प्रत्येक संवेदनशील मनुष्य की भाँती कविवर संसार के भविष्य को लेकर चिन्तित है। कवि गौतम बुद्ध के 'मध्यम मार्ग' का अनुकरण करने का परामर्श देता है। यही मार्ग श्रेयस्कर है। मध्यम मार्ग अपनाने के बाद शोषण मुक्त विश्व-व्यवस्था का अभ्युदय होगा। महेनतकशों को भी सम्मान मिलेगा। मानव का 'आर्तनाद' समाप्त हो जाएगा और एक नए विश्व का निर्माण होगा। इस संदर्भ में **डॉ. 'व्यथित'जी लिखते है –**

''दिल का शासन जग पर होगा, हानि–लाभ मिट जाएगा।
मानवता का बिगुल बजेगा, राम राज्य आ जाएगा।।''[30]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी काव्य-दृष्टी लोक रंजक है। कल्पना शक्ति और भी मन भावन है। कवि अपनी सहज कल्पना की सीढ़ी से रावण की आत्मा को स्वप्नावस्था में जन-जन तक पहुँचाकर प्रश्नों और समस्याओं की ऐसी झड़ी लगा देता है। कि जागृतावस्था में सभी चिन्तन, मनन और शमन के मजबूर जो जाते हैं। भ्रष्टाचार, अनाचार, व्यभिचार, दुराचार के पाश में रावणत्व से प्रभावित हो चुका है। जिसके परिणाम स्वरूप जीवन के हर क्षेत्र में 'आर्तनाद' की करूण पुकार सुनाई पड़ रही है। आज हर व्यक्ति अपनी जगह पर चीखता-चिल्लता नज़र आ रहा है। एक सार्थक शब्द-शृंखला में यह कहना उपर्युक्त लगता है कि 'आर्तनाद युगीन' पीड़ा का सचमुच पारावार है।

अंत में डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी राम और रावण को एक साथ मिलाकर युग निर्माण के लिए प्रेरणा प्रदान किया है, ठीक ही किया है, इस खण्ड-काव्य में वैज्ञानिक तथ्य भी है। यदि विश्व के भयंकर और असामाजिक तत्वों को मार्गान्तरित कर उनकी शक्तियों का सदुपयोग। किया जाय तो उससे विश्व का महान कार्य सिद्ध हो सकेगा। 'आर्तनाद' की परिकल्पना करके कवि ने विश्व की सन्त्रस्त मानवता को एक सन्मार्ग और आशान्वित प्रदान किया है।

संदर्भ-सूची

1) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-04
2) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-05.
3) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-05.
4) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-05.
5) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-06.
6) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-07.
7) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-09.
8) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-09.
9) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-01
10) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-11.
11) प्रधान संपा.-कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/23.
12) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-07.
13) प्रधान संपा.-कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/22.
14) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-04.
15) प्रधान संपा.-कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/13.
16) प्रधान संपा.-कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/13.
17) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-17.
18) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-22.
19) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-22.

20) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-24.
21) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-24.
22) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-30.
23) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-36.
24) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-37.
25) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-36.
26) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-36.
27) प्रधान संपा.-कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/20.
28) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-37.
29) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-39.
30) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-आर्तनाद, पृष्ठ-43.

नेताजी – (खण्ड–काव्य)

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी द्वारा रचित 'नेताजी' सुभाष चन्द बोस के जीवन पर एक खण्ड काव्य है। इस संपूर्ण काव्य का कथ्य भारत की आजादी के लिए संघर्ष करते हुए द्वितिय विश्व युद्ध के समय दक्षिण तथा पूर्व एशिया में 'आज़ाद हिन्द फौज' के संगठन, संघर्ष तथा नेताजी की अकाल एवं आकस्मिक मृत्यु से सम्बन्ध रखता है। यह खण्ड-काव्य इतनी सरल तथा सरस भाषा में लिखा गया है कि पढ़ते ही आसानी से समझ में आ जाता है और भारत के सपूत नेताजी नाम लेते ही देश के बच्चे, जवान, वृद्ध नर एवं नारी सभी का सिर गर्व से रोमांचित हो जाता है। प्रस्तुत पुस्तक में 'व्यथित'जी समानता की बात करते हुए कहते हैं कि-

''यहाँ नहीं है हिन्दू कोई, नहीं मुसलमां पाओगे।
हिन्द देश के वासी हम सब, छेद नहीं कर पाओगे॥''[1]

प्रस्तुत खण्ड काव्य में कुल चार सर्ग है- (1) उदय सर्ग, (2)मुक्ति सर्ग, (3) दुर्दिन सर्ग और (4) मंथन सर्ग। उपर्युक्त चारों सर्गो में कुल 332 पदों का समावेश किया गया है।

डॉ. जगदीश्वर प्रसाद का कथन है कि– '' 'नेताजी' काव्य राष्ट्र के नाम उद्‌बोधन स्वरूप है। देश की स्वतंत्रता के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वाले नेता सुभाष के जीवनवृत्त से बढ़कर देश की सुप्त चेतना को झकझोर ने वाला और दूसरा कौन सा आख्यान कहो सकता है। कवि ने काव्य का कथा-विन्यास नेताजी के राष्ट्र के लिए समर्पण भाव, अदम्य साहस, संघर्ष और बलिदान और बलिदान की करूण गाथा को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से किया है उनके त्यागमय जीवन की अभिव्यक्ति चार सर्गों में हुई है - उदय, मुक्ति, दुर्दिन और मंथन ।''[2]

'नेताजी' काव्य की रचना नैतिक मूल्यों से हीन राष्ट्र-चेतना से शून्य होते जा

रहे जन मानस में राष्ट्रीयता-बोध जगाने के उद्देश्य से हुई। डॉ. 'व्यथित'जी ने उद्देश्य को इन शब्दों में व्यक्त करते हुए लिखते हैं -

''बात यही करनी थी अन्तिम, आगे बोल न पाऊँगा।
करो बन्दगी माँ की मिल-जुल, बन्धु यही समझाऊँगा॥''[3]

सूर्य के उदय एवं अस्त होने के समान 'नेताजी' खण्ड-काव्य के प्रथम सर्ग में 'व्यथित'जी ने गुलामी में जकड़े भारत देश में अंग्रेजी राज्य के अत्याचारों से त्रस्त होकर बिजली की भाँति प्रकट होना बताया है। भारत वासियों के उपर हो रहे अत्याचारों को नेताजी ने वामन का रूप धारण करके थाम लिया -

''जुल्म और व्यभिचार ब्रिटशि का, जिससे भारत काँपा था।
नेताजी ने वामन बनकर, पग से उसको नापा था॥''[4]

'नेताजी' को उनके पिताजी सांसारिक सुख और समृद्धि से भरा जीवन देना चाहते थे, उच्चकोटि का अफसर बनाना चाहते परन्तु सुभाषचन्द्र बोस के कानों में कष्ट से कराहती मातृभूमि की आवाज सुनाई दे रही थी। अत: आई.सी.एस. में चौथा स्थान प्राप्त करके अफसर बनने के पश्चात् भी नेताजी को शान्ति नहीं मिली। अन्तत: सुभाषचन्द्र बोस के सुदृढ़ विचारों की जीत हुई और उन्हेंने 22 अप्रैल 1922 को आई.सी.एस पद नौकरी से त्यागपत्र देकर वे देश के प्रति सेवाकार्य में जुट गए। सुखमय जीवन उन्हें बन्धन में नही बाँध सका। अदम्य साहस और उत्साह में भरकर नेताजी ने ब्रिटिश सत्ता को चुनौती दी।

'नेताजी' की इस त्याग गाथा के पश्चात् उनकी कूटनीतिज्ञता का परिचय दिया है। उनमें सिर्फ मातृभूमि की मुक्ति की व्याकुलता ही नहीं, साथ ही साथ पर्याप्त बुद्धि कौशल भी था ? नेताजी का परिचय देते हुए 'व्यथित'जी ने उनके नजर बन्द होने, सन्याास लेने का बहाना करने और जियाउद्दीन बनकर विदेश-पलायन वर्णन

किया है।

डॉ. गौरीशंकर पाण्डेय 'अरविन्द' का कथन है कि– ''प्रथम सर्ग 'उदय' में कविवर 'व्यथित'जी ने नेताजी के आविर्भाव और तत्कालीन ब्रिटिश शासन को परिस्थितियों का काव्यात्मक उल्लेख किया है। उस समय भारत माता तड़प रही थी, जनमानस में घोर निराशा छाई थी। इस तथ्य का जैसा सहज सरल निरूपण कविने किया है।

भारत माता तड़प रही थी, पैरों में जंजीरें थी।
जनमानस में घोर निराशा, कालिख पुती लकीरें थी॥''[5]

नेताजी जानते थे कि स्वाधीनता के लिए मात्र स्वाधीनता को चाहें तो समय अब आ गया है। स्वाधीनता का अर्थ सिर्फ व्यक्ति नहीं, सम्पूर्ण समाज की दृष्टि से मुक्ति है। सम्पूर्ण रूप से मुक्त भारत वर्ष का रूप-स्वरूप नेताजी के हृदय में बसा है। स्वाधीनता प्राप्ति का एक मात्र उपाय है स्वाधीन व्यक्ति की तरह सब-कुछ का अनुभव, जो नेताजी में था। भारत देश स्वाधीन होगा इस में कोई संदेह नहीं। जिस तरह रात के बाद दिन अनिवार्य है, उसी तरह यह भी अनिवार्य है। स्वाधीनता का राह कोई सहज, बिना बाधा-विघ्न का पथ नहीं है। स्वाधीनता के राह पर जैसे आपत-विपत है, वैसे ही गौरव और अमरत्व भी है। इस खण्ड-काव्य में कवि हमे संगठित होकर स्वाधीनता प्राप्ति के लिए कटिबद्ध हों और उद्यम में जीवन होमकर मृत्युंजयी देश के लिये योग्य बनने के लिए कहना चाहते हैं।

डॉ. 'व्यथित' जी ने अंग्रेजी की कूटनीति और तत्कालीन निराशा के वातावरण का निम्नलिखित छन्दों में मर्मस्पर्शी वर्णन करते हुए लिखते हैं कि–

''घोर निराशा के बादल थे, बल–पौरुष सब हारे थे ।
धर कर हाथ, हाथ पर बैठे, हम किस्मत के मारे थे ॥''[6]

विषय परिस्थिति में महापुरुष नेताजी सुभाष चन्द्र-बोस का आविर्भाव होता है। बचपन से ही वीर सुभाष के मन में देश, जाति और गुलामी से मुक्ति का भाव जग गया था-

''देश-जाति की मुक्ति हेतु वह, मुरली मधुर बजाया था।
बन्धन से निर्बन्ध बनें सब, पाठ यही सिखलाया था॥''[7]

नेताजी का मन अब आज़ादी की फसल उगाने के लिए उद्यत हो गया था। वह किसी भी परिस्थितियों में विचलित होने वाला न था। इन भावों को 'व्यथित'जी सहज और मार्मिक चित्रण करते हुए लिखते हैं कि-

''आँधी या तूफान खड़ा हो, विचलित कभी न होना है।
माया-मोह-मुक्त हो निर्भय, दाग धरा का धोना है॥''[8]

सुभाष चन्द्र बोस की दृष्टि में मातृभूमि के हित-चिन्तन का भाव सर्वोपरी था। स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए उन्होंने 'फॉरवर्ड-ब्लाक' का गठन किया और बन्दिनी बनी भारत माता की मुक्ति के लिए वे संकल्पबद्ध हो उठे-

''बनी वन्दिनी भारत माता, उसको धैर्य बँधाना है।
मुट्ठी भर गोरों से अपनी, माँ को मुक्त कराना है॥''[9]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी सुभाषचन्द्र बोस की शक्ति भक्ति का कितना साहित्यिक वर्णन यहाँ किया है, यह देखते ही बनता है-

''अद्भुत शक्ति-भक्ति यह उनकी, जिससे बाहर आये थे।
मुक्त गगन में पक्षी (पंछी) जैसे, मेघ-लहर लहराये थे॥''[10]

डॉ. 'व्यथित' जी द्वारा रचित 'नेताजी' खण्ड-काव्य में द्वितीय सर्ग का सम्बन्ध नेताजी के 'मुक्ति' संग्राम से है। इसी सर्ग में उनकी अफगानिस्तान होते

हुए इटली और जर्मनी की यात्रा करना तथा वहाँ लोगों को अंग्रेजों के अत्याचार की व्यथा सुनाकर उन्हें अपने पक्ष में करने का वर्णन किया गया है। नेताजी ने बर्लिन में भारत मुक्ति केन्द्र की स्थापना की। हिटलर से मिलकर उन्होंने उससे सहयता का वचन लिया और बाद में सिंगापुर की यात्रा की। सिंगापुर में नेताजी का मिलन प्रसद्धि क्रान्तिकारी रासबिहारी बोस से हुआ। नेताजी और रास बिहारी बोस के मिलन से इस मुक्ति संग्राम की शक्ति दुगनी हो गई।

इस तरह दूसरे सर्ग 'मुक्ति' में, नेताजी गुलामी से मुक्ति के लिए आगे बढ़ते हैं। नेताजी जर्मनी और इटली से सहायता का आश्वासन पाते हैं-

''इटली और जर्मनी मिलकर, स्वागत फिर भरपूर किये।
और मदद का आश्वासन दे, शूल पंथ के दूर किए ॥''[11]

सुभाष चन्द्र बोस ने हिटलर से मिलकर स्वातन्त्रय युद्ध के लिए एक व्युह-रचना की। उसे डॉ. 'व्यथित'जी ने निम्न लिखित पद में लिखते हैं कि-

''हिटलर से मिल व्यूह बनाकर, मन्द मन्द मुस्काए थे।
कर में लेकर विजय-शंख अब, आगे कदम बढ़ाये थे॥''[12]

द्वितिय विश्व युद्ध में जापान भी युद्ध में कूद पड़ा। सिंगापुर में गोरों की हार हुई। बर्मा हाथ से निकल गया। ऐसे समय में रास बिहारी बोस ने नेता सुभाष चंद्र बोस को मुक्ति फौज का सेनापति बनाया। रास बिहारी बोस और नेताजी के क्रान्तिकारी भाषणों से देश के लोगों में सर्वस्व समर्पण की प्रेरणा जाग उठी। रंगून और सिंगापुर पर इस भाषणों का विशेष प्रभाव पड़ा था। जाति और धर्म का भेदभाव भूलकर सभी भारत के स्वतंत्रता संग्राम में सम्मिलित हो गए। भारत में भी स्वतंत्रता आंदोलन अपने उतकर्ष पर पहुँचा। आजाद हिन्दी की सेना आगे कूच करती जा रही थी। बच्चें और महिलाएँ भी इस सेना में सम्मिलित थे। सेना में

उत्साह, एकजुटता और कठोर अनुशासन भी परन्तु साधना का अभाव था। नेताजी धनाभाव के कारण चिन्तित थे। ऐसे ही समय में हबीबुर नामक व्यकित भामाशाह बनकर उपस्थित हुआ। उस व्यक्ति ने अपनी करोडों की सम्पति नेताजी को अपिर्त कर दी। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने हबीबुर को हिन्द सेवक की उपाधि प्रदान की। 'बटाई' नामक गुजराती महिला ने भी आज़ाद हिन्द फौज के लिए तीस लाख की दान दी। इससे फौज में नयी शक्ति और नया उत्साह का संचार हुआ। 'कोहिमा' और 'इंफाल' फौज के अधिकार में आ गया। सभी दिल्ली पर तिरंगा फहराने का सपना देख रहे थे।

इस समय विश्व युद्ध प्रारम्भ ही था, उधर सिंगापुर में भीषण लड़ाई के बाद गोरे हारे थे। ब्रिटिश राज्यने अब तक ब्रह्म देश क़ो खो दिया था। सुभाष चन्द्र बोस के साथ अब तो रास बिहारी बोस, वीर भगतसिंह और सेनानी चन्द्रशेखर आज़ादी आ चुके थे। स्वतंत्रता की बलि वेदी पर ये सभी सेनानी हँसते-हँसते चढ़ने के लिए तैयार थे। इस समय राष्ट्र और धर्म सब लोगों को प्यारा बन चुका था। आज़ाद हिन्द के सैनिक मृत्यु गान में मग्न थे। वे फिरगियों को भगाने के लिए किसी भी बलिदान के लिए कटिबद्ध थे। इसी को 'व्यथित'जी ने निम्नलिखित पद में लिखते हैं-

''अब आजाद हिन्द के सैनिक, मृत्यु-गान को गाते थे।
भगो फिरंगी दूर वतन से, गरज -तरज जल जाते थे॥''[13]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी लिखते हैं कि वीर नेताजी ने 'मुक्ति-संग्राम' के लिए एक बढ़िया सा संगठन बना लिया था। नेताज की बुद्धि और संगठन शक्ति से ब्रिटिश शासक भयभीत थे-

''ऐसी शक्ति, संगठन ऐसा, कहीं न देखा भाला था ।

नेताजी की बुद्धि-शक्ति का, पड़ा ब्रिटिश को पाला था ॥''[14]

नेताजी और यहाँ की मुक्ति-वाहिनीने अबतक तो जलियाँवाले बाग काण्ड का बदला ले लिया था। जुल्मी गोरे पीठ दिखाकर भाग चले-

''जलियाँ वाले बाग का बदला, जालिम से ले पाये थे ।
जुल्मी भागे पीठ दिखाकर, अपने मुँह की खाये थे ॥''[15]

तृतीय सर्ग 'दुर्दिन' में नेताजी के करूण अंत की कथा है। सहसा अब बाजी पलट गई। हिरोसिमा और नागासाकी पर अमरिका द्वारा अणुबम के प्रहार ने जापान को घुटने टेकने पर बाध्य कर दिया। अब अंग्रेजों के होंसले और बुलन्द हो गए। नेताजी इस घटना से चिन्तित अवश्य हुए किन्तु हतोत्साहित नहीं। ईश्वर की इच्छा मानकर उन्होंने लोगों को फल की कामना नहीं कर कर्म करने का उपदेश दिया। मुक्ति फौज के सैनिकों में उत्साह तो था परन्तु साधनों के अभाव के कारण हर मोर्चे पर उनकी हार हो रही थी। इससे सभी जनरल चिन्तित थें। जनरल कासलीवाले ने जब इस पराज्य की सूचना नेताजी को दी तो इससे वे चिन्तित नहीं हुए। नेताजी ने कासलीवाले को समझाते हुए कहा कि जीत हमारी निश्चित है क्योंकि हमारी सेना में उत्साह है। अंग्रेजी सेना के भारतीयों में भी अब तो देश भक्ति जाग उठी है और अब वे लोग अपने आपको गोरों से अलग समझने लगे हैं। अब भारतवासियों में भी जागृति आ गई है। हमारे पराजित होने पर वे लोग चुप बैठे नहीं रहेंगे। वहाँ भी विद्रोह जाग उठेगा।

इसी बीच में एक अनहोनी घटना घट गई। नेता सुभाष चन्द्र बोस का सपना अधुरा रह गया। नेताजी वायुमान से बैंकाक पहुँचे, वहाँ से सामगाम और वहाँ से विमान जो उड़ा वह तायहुकू में ध्वस्त हो गया। पूर्व का सूर्य अब अस्त हो गया। भारत देश के उस सपूत के बलिदान से भारत माता चीत्कार कर उठी और एकदम

बाजी पलट गयी। मुक्तिवाहिनी पराजित हो गई और उसे बन्दी बना लिया गया-

''हुआ नहीं विश्वास किसी को, साजिश सब ने मानी थी।
पूरब के सूरज की हस्ती, दिग्-दिगन्त पहचानी थी॥''[16]

इधर स्वदेशी आन्दोलन तीव्र हो उठा जिससे अंग्रेजों को विवस होकर भारत छोड़ना पड़ा। मुक्ति फौज के सैनिक मुक्त हुए। देश की मुक्ति का यज्ञ पूर्ण हुआ। भारत देश स्वतंत्र हुआ। जिन महा पुरुषों को भारत की स्वतंत्रता का श्रेय है उनमें नेताजी सुबास चन्द्र बोस का स्थान सर्व प्रथम आता है। धर्म और जाति का भेद मिटाकर लोगों में जो राष्ट्र प्रेम का भाव जगाया गया उसे अपनाने पर ही स्वतंत्रता सार्थक हो सकती है-

''आज़ादी का श्रेय सत्य ही, जिन पुरुषों को जाता है।
उनमें नंबर एक नाम जो, 'नेताजी' कहलाता है ॥''[17]

स्वतंत्रता सेनानियों का अब सभी जगहों पर स्वागत होता है। दूसरी तरफ 6 अगस्त सन् 1945 का प्रात: काल सामने आता है। 'हिरोशिमा' और 'नागाशाकि' भी विनाश के कगार पर पहुँचने को थे। जर्मनी और जापान अब पुर्ण रूप से टूट गए थे। अनगिनता नर-संहार हो गया था। डॉ. 'व्यथित' जी ने इस तथ्य का कितना सहज सरल वर्णन किया है, यह ध्यातव्य है-

''टुट गया जापान-जर्मनी, अगणित नर-संहार हुआ।
नग्न-नृत्य था दानवता का, गोरों का उद्धार हुआ॥''[18]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अगामी कुछ छन्दों में अन्यान्य घटनाओं का वर्णन किया है। अब तो राष्ट्र प्रेम का रंग भारत में और भी बढ़कर सभी पर छा गया था-

''छँटे निराशा के बादल अब, राष्ट्र-प्रेम रंग लाया था।
राष्ट्र-प्रेम के रंग में सब ने, तन मन को नहलाया था ॥''[19]

15 अगस्त सन् 1947 के दिन आज़ादी मिली। ब्रिटीश राज का अन्त होता है। इस समाचार का डॉ. 'व्यथित'जी सहज-सरल भाषा में वर्णन किया है, वह उल्लेख है-

''हुआ देश आजाद अमन के, डंके घर-घर बाजे थे।

ब्रिटिश राज का अन्त हुआ था, प्रजातंत्र हम साजे थे ॥''[20]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने नेता सुभाष चन्द्र बोस के प्रति लोक-संवेदना को कैसे दर्शाया है, यह निम्नांकित छन्द से स्पष्ट है-

''सबके दिल की घड़कन वे थे, सबके दिल पर छाये थे।

ऊँच-नीच का भेद नहीं था, सबको सब में पाये थे॥''[21]

मेरे मंतव्य से डॉ. 'व्यथित'जी एक दूरदर्शी कवि है। यह स्पष्ट करते हुए प्रसन्नता है कि डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने नेताजी के महत्व को आज भी उतना ही प्रांसगिक बतलाया है, जितना कि वे तब प्रासंगिक थे।

नेता सुभाष चन्द्र बोस का एक विराट व्यक्तित्व बाह्य और आन्तरिक धरातला पर निरन्तर संघर्षशील रहा। संघर्ष नेताजी के जीवन की कथा रही। मुक्ति की कामना ने उन्हें विद्रोही बनाया, असीम शक्ति प्रदान की और उनके संकल्प को दृढ़ता दी। ऐसे वीर, तेजस्वी नायक के साहसिक अभिमान को कवि 'व्यथित'जी ने उनके 'नेताजी' खण्ड काव्य में गौरवशाली अतीत का उल्लेख किया है। इसकी वजह से उनके खण्ड-काव्य में भाव, विचार और काव्य शैली की विविधता आ गयी है।

चतुर्थ सर्ग 'मंथन' नामक है। इसका सम्बन्ध वैचारिक मंथन से है। देश की वर्तमान दयनीय स्थिति, नैतिक मूल्यों की गिरावट और राष्ट्र के प्रति चिन्ता का अभाव देखकर नेता सुभाष चन्द्र बोस की आत्मा आज दु:ख से व्याकुल हो रही

है। ऐसे देखा जाय तो नेताजी सही अर्थों में नेता थे। वे देश की स्वतंत्रता के लिए प्राणों की आहुति देने वालों में से थे। किन्तु आज के नेता दूसरों को बेवकूफ बनाकर अपना घर भरने के चक्कर में रहतें हैं। **कवि के शब्दों में–**

''बाँटो और बनाओ बुद्धू, छल–प्रपंच शिखलाते हैं।
यही नीति अपनाते फिर भी, नेता वे कहलाते हैं।।''[22]

काव्य के अन्त में आक्रोश भरी वाणी में देश के स्वार्थी तत्वों को बेनकाब करते हुए 'व्यथित'जी नेताजी और उन जैसे बलिदानियों की आत्मा को पुनः जाग्रत करने का आह्वाहन किया है।

वर्तमान दुर्व्यवस्था का कारण यह है कि जो राष्ट्रीय चेतना नेताजी ने जगायी थी, वह समाप्त हो गयी है। सभी लोग अपने स्वार्थ की सिद्धि के षडयंत्र में तल्लीन है। आज के युग ऐसे नेता की आवश्यकता है, जिनके लिए देश सर्वोपरी है और जो धर्म-जाति के भेद-भाव की भावना से ऊपर उठे हुए हैं। ऐसे नेताओं के सामने आने पर ऐसे लोगों की दाल नहीं गल पायेगी जो छिप-छिपकर आग लगाते हैं। देश की वर्तमान दुर्व्यवस्था का चित्रण करते हुए डॉ. **'व्यथित'जी ने लिखा है–**

''बने स्वार्थी नीच महा सब, काल–सर्प सब पाले हैं।
दंशित है यह राष्ट्र हमारा, दिखते काले–काले हैं ।।''[23]

देश की वर्तमान परिस्थिति देखकर भारत माता पछता रही है। देश के सभी अमर शहीद और सुभाष चन्द्र बोस से पूछ रहे हैं कि क्या हमने इसिलिए कुर्बानी दी थी। देश की आपसी फूट देखकर 'व्यथित' जी फूट-फूटकर रो रहे हैं और देश की चिन्ता से विमुख लोगों के प्रति आक्रोश की भाषा में लिखते हैं-

''कितने ऐसे नमक–हरामी, नीच पातकी पलते हैं ।
जिनकों नहीं देश की चिन्ता, देख देश को जल कते हैं ।।''[24]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी देश के विरुद्ध काम करने वाले ऐसे लोगों को वह जहरीला नाग, मगरमच्छ, आंभीक, दुष्ट-दरिन्दा, जयचन्द्र आम्भीक कहते हैं और उनकों ढूँढकर मारने, जेल में बन्द कर देने का और उनका फन कुचल देने का आह्वाहन करते हुए लिखते हैं-

''ढूँढ़ों और ढूँढ़कर मारो, बेनकाब कर देना है।
बिल्ली-पाँव गये जो दिल्ली, बन्द जेल कर देना है ॥''[25]

देश में चारों तरफ लूट और आतंक का वातावरण फैला हुआ है। प्रशासन में नख से सिख तक भ्रष्टाचार व्याप्त है। ऐसे देशद्रोहीयों को शबक सिखाना है। इनकी मुश्कें बाँधकर, नाथकर सही राह पर लाने के लिए 'व्यथित'जी लिखते हैं-

''यही देश के दुश्मन-द्रोही, इनको सबक सिखाना है।
कसकर मुसुक नाथकर इनको, सही मार्ग पर लाना है ॥''[26]

नेता सुभाष चन्द्र बोस का अद्म्य साहस, त्याग, बलिदान और शौर्य की गाथा नहीं, देश की सुसुप्त आत्मा को झकझोर ने का प्रयास किया है। इस दृष्टि से यह सर्ग सबसे मह्त्तवपूर्ण है। यह सर्ग वर्तमान सन्दर्भों से जोड़ता है।

वीर नेताजी की शहादत की पृष्ठभूमि में देश की वर्तमान स्थिति को देखकर डॉ. 'व्यथित' जी का हृदय रो उठता है-

''व्यथित हृदय की व्यथा सँभाले, आज शहादत रोई है।
अपनों ने ही अस्मत लूटी, धरम-धरा ने सब खोई है ॥''[27]

चौथे सर्ग 'मंथन' में डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने स्वतंत्रता-संघर्ष को घटनाओं को लेकर विचार-मंथन किया है। 'व्यथित'जी अपने विचारों को सामान्यी कृत करते हुए कुछ अनुपालनीय तथ्यों की ओर संकेत करते हुए लिखते हैं-

''राजनीति औ धर्म अलग हैं, साथ न दोनों चलते हैं।

कुशल खिलाड़ी फिर भी उनमें, खूब मिलावट करते है॥''[28]

डॉ. 'व्यथित'जी का कवि छल, विखण्डन, बन्धुद्रोह और राष्ट्रदोह आदि का विरोधी है। वह ऐसे लोगों को धिक्कारने में कोई कसर नहीं रखता। कवि उसकी संवेदन, विलखती भारत माता के प्रति स्पष्ट है-

''जिससे खण्डित हुआ देश यह, भारत माँ बिलखाई है।

विश्वजीत कहलाने वाला, हुआ आज विषयपायी है॥''[29]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी भ्रातृ-भाव दरसाने में पूरी तरह से आस्था रखते हैं। 'व्यथित' उस मार्ग श्रेष्ठ समझते हैं जिस मार्ग पर चलकर राष्ट्र के शूरवीरों ने अपनी कुर्बानी दी है-

''पत्थर बने पसीजो अब तो, भातृ-भाव सरसाना है।

सर पर बांध कफन जो निकले, उनके ही पथ जाना है॥''[30]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी ने चौथे सर्ग के कथ्य में अधिकांश अपनी ही बातें कही है, अपने भाव-विचार व्यक्त किए है और समाज के लोगों की अनेक हीन निन्दनीय प्रवृत्तियों को प्रकाशित किया है। इससे यह प्रतीत होता है कि 'व्यथित'जी मौलिकता का हामी है। प्रय: इसी अंक के कथ्य के माध्यम से कवि ने पाठक के लिए अपना संदेश दिया है। कविवर को शहीदों के सपने अच्छे लगते हैं और उस भारत की सुघरता वांछित है-

और शहीदों के सपनों का, भारत सुघर बनाना है।

उसके भव्य भाल पर चलकर, कुमकुम तिलक लगाना है॥''[31]

डॉ. 'व्यथित'जी का अन्तर्मन अनुशासन का पक्षधर है। देश के संचालन के

लिए वह इस आवश्यक मानते हुए लिखते हैं -

''शासन सख्त और अनुशासन, तभी देश चल पायेगा।

नहीं तो दुश्मन घर-घर बैठा, लुक छिंप आग लगायेगा ॥''[32]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी को भारत माता की वन्दना अभ्यर्थना सर्वथा अभीष्ट है। कवि को भारत की आध्यत्मिक सांस्कृतिक चेतना में पूर्णरूप से आस्था है। इस खण्ड-काव्य में नेता सुभाषचन्द्र बोस की कथा के बहाने उसने अपनी आन्तरिक भावनाओं को व्यकत किया है। उसे भारत देश के गौरवशाली अतीत की बराबर याद है। कवि सुभाष चन्द्र के वीरता पूर्वक कृत्यों के बहाने देश में जन जागरण करना चाहता है। दुष्टों को मार भगाया जाय, तभी हमारे और देश के शहीदों के सपने सज सकेंगे। इस मत को व्यक्त करते हुए **डॉ. 'व्यथित' जी लिखते हैं-**

''इनको मार भगाने से ही, राहु-केतु भाग जायेंगे।

तभी शहीदों के सपनों को, मिल जुल सभी सजायेंगे ॥''[33]

पद्मश्री डॉ. केशवराम का. शास्त्री का कथन है कि -''ऐतिहासिक काव्य (Historiacal poem) में कवि, कवि सम्प्रदाय का अनुसरण करके कल्पना का भरपूर उपयोग करता है, जैसा 'ऐतिहासिक उपन्यास या नाट्य रचना (Historical Novel or Drama) जिसमें कतिपय पात्र इतिहास के व्यक्ति होते हैं, कतिपय काल्पनिक अथवा हिन्दी में तो ऐसे संख्याबन्ध उपन्यास हैं, जिनमें सिर्फ वातावरण ही अमुक अमुक युग का, पात्र एवं कथा सर्वथा काल्पनिक, 'इतिहास काव्य (History-poem)' वह यथार्थ स्वरूप में रचित तो है ही, उपरान्त वर्तमान कालीन यानी रचित-नायक के समय के आनुषङ्गि प्रसंगों के भी गठन से समृद्ध है। उसमें सादा गद्य नहीं रहता है, वह एक ही छन्द अथवा अनेक छन्दों से

मण्डित भी हो सकता है। यह 'नेताजी' खण्ड-काव्य एक ही छन्द 'सवैया तीसा' से मण्डित है। संस्कृत का 'अनुष्टुप' आ 'उपजाति' वृत्त अपने महाकाव्यों एवं पुराण ग्रंथों में अखण्ड प्रवाह में बढ़ता रहता है, मानस में जैसे चौपाईयाँ आगे बढ़ती रहती है, उसी प्रकार सवैया 'तीसा' हो, 'एकतीसा' हो या 'बत्तीसा' हो वह अखण्ड प्रवाह में बहता रहता है।''[34]

प्रस्तुत खण्ड-काव्य में 'नेताजी' की 332 दोहें हमें अखण्ड प्रवाह में ले जाती हैं। प्रवाह इस कारण अविच्छिन्न-अखण्ड है कि प्रवाह को रोकने वाला एक भी शब्द या एक भी प्रसंग कहीं भी दीख नहीं पड़ता है। यह खण्ड-काव्य प्रसाद गुण से समृद्ध हैं और 'स्वाभावोक्ति' अलंकार के पद्य भी दिखाई पड़ते हैं और शब्द समृद्धि भी इसकी आकर्षक है-

''मातृभूमि ! हे प्राण-दायिनी ! तुझको नमन करूँगा।
तेरी शक्ति-भक्ति में मइया, श्रद्धा-सुमन धरूँगा ॥''[35]

राष्ट्रभक्ति से परिपूर्ण इस खण्ड-काव्य में डॉ. 'व्यथित'जी ने देश के प्रति सर्वस्व समर्पण की और अपने मन में छिपी हुई भावना को व्यक्त किया है। गाँधीवादी से प्रभावित सर्वोदयी डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी के लिए 'नेताजी' एक आदर्श हैं। अन्याय, शोषण और अत्याचार के विरूद्ध कवि की लेखनी हंमेशा अवाज उठाती रही है। 'रैन बसेरा' मासीक पत्रिका के कई अंक इसके प्रमाण हैं। गाँधीजी और नेता सुभाष चन्द्र बोस का एक साथ समन्वय करके डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी ने जीस क्रंतिकारी व्यक्तित्व का निर्माण किया है, वह युग-युग तक पीढ़ियों का मार्ग दर्शन करता रहेगा।

संदर्भ-सूची

1) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-33.

2) प्रधान संपा. डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/118.

3) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-84.

4) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-01.

5) प्रधान संपा. डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर-अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/112.

6) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-03.

7) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-07.

8) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-09.

9) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-14.

10) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-18.

11) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-22.

12) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-24.

13) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-32.

14) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-36.

15) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-44.

16) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-60.

17) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-66.

18) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-50.

19) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-52.

20) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-65.

21) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-66.

22) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-69.

23) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-78.

24) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-79.

25) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-81.

26) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-83.

27) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-85.

28) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-70.

29) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-74.

30) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-75.

31) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-77.

32) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-81.

33) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, पृष्ठ-84.

34) प्रधान संपा. डॉ. कृष्णकुमार ठाकुर- अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/107.

35) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-नेताजी, सरस्वती वंदना से.

''बालकृष्ण''- (खण्ड-काव्य)

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी द्वारा रचित 'बालकृष्ण' खण्ड-काव्य में दस सर्ग हैं। प्रथम 'कृष्ण-जन्म', द्वितीय 'मथुरा से गोकुल', तृतीय 'कृष्ण-जन्मोत्सव', चतुर्थ पूतना वध, पंचम् 'विश्वरूप-दर्शन', षष्ठ 'कालि दमन', सप्तम् 'सांदिर्पान की शाला', अष्टम् 'गोवर्धन-पूजा', नवम् 'कंस-वध' और दशम् 'मुक्ति' ''बाल-कृष्ण''खण्ड-काव्य का शीर्षक, इस बात का द्योतक है कि डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी बाल भारत को श्रीकृष्ण की परमपावन कथा सुनाकर उनके आदर्शों की ओर उन्मुख करना चाहते हैं। इस कृति में आनेवाली पीढ़ी के सामने एक ऐसा आदर्श चरित्र प्रस्तुत करना चाहते हैं जिस में ज्ञान, भक्ति और कर्म का सुन्दर सामंजस्य स्थापित है। 'व्यथित'जी ने अपनी विशिष्ट शैली में अपने पुरुषार्थ के द्वारा आश्चर्य चकित करने वाली अनेक घटनाओं को जन्म दिया है। उनकी भाषा में स्वाभाविकता है। कविवर ने द्वापर के युग प्रवर्तक श्री कृष्ण के बाल-जीवन के दस प्रख्यात प्रसंगों को अपनी सरल-सुगेय काव्य शैली में पिरो कर राष्ट्रीय चेतना जगाने का सफल एवं प्रशस्त कार्य किया है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने 'बालकृष्ण' खण्ड-काव्य हिन्दी और गुजराती में भी रचना की है।

राम अवधेश त्रिपाठी 'वियोगी' का कथन है कि- ''भगवान राम और भगवान कृष्ण भारतीय संस्कृति के सूर्य-चन्द्र हैं। एक ने सूर्य वंश में अवतार लेकर और दूसरे ने चंद्र-वंश में अवतार लेकर अपने कर्तव्य-पालन और अपनी लोक-सेवा द्वारा परम पूज्यता प्राप्त की है। दोनों ने ब्रह्मा, विष्णु और महेश से वन्दनीयता प्राप्त कर निराशान्धकार में आशा का भास्कर उगाया है। दोनों ने साधुजनों का परित्राण और दुष्टजनों का संहार कर मानवता को महिमा-मण्डित किया है। इसीलिए राम-भक्त की सुर सरिता और कृष्ण-भक्ति की यमुना में स्नान कर भारत-भूमि ने

'स्वर्गादपि गरीयसी' का गौरव प्राप्त किया है। अनेकानेक कवियों, लेखकों, संतो, महात्माओं और मनीषियों ने इन दोनों महान विभूतियों को विविध प्रकार से जनता-जनार्दन की सेवा और उसके समुद्धार हेतु प्रस्तुत किया है। श्री जयसिंह 'व्यथित' जी ने भी अपने 'बालकृष्ण' में भगवान श्री कृष्ण को अपने काव्य-कुसुमों की माला पहनाकर उद्धारक, धर्मपालक के रूप में चित्रित करने का सफल प्रयास किया है।''[1]

श्री कृष्ण सोलह कलाओं से विभूषित थे। भगवान श्रीकृष्ण अपनी बाल-लीला, मुरली-वादन, रूप-माधुरी, गोप-गोपी लीला, भ्रमर गीत आदी द्वारा भारती जीवन में रसामृत प्रवाहित किया है। इसीलिए उनका जीवन लीलावतारी कहां जाता है। प्रस्तुत खण्ड-काव्य में भगवान श्री कृष्ण के लीलामय जीवन के दस बाल प्रसंगों को लेकर उन्हें दस छोटे-बड़े सर्गों में प्रभावशाली और मनमोहक रूप से प्रस्तुत कर डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने इसे बाल कृष्णायन बनाने का सफल और अभिनन्दनीय प्रसाय किया है।

प्रस्तुत कृति 'बालकृष्ण' खण्ड-काव्य के प्रथम सर्म 'कृष्ण-जन्म' में डॉ. 'व्यथित'जी ने श्री कृष्ण का जन्म सम्बन्धी वृतान्त प्रकट किया है। इस कृति में अलंकारों की रमणीय छटा भी यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है। कविवर की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह कथानक कहते-कहते दार्शनिक की भाषा बोलने लगता है एवं कह उठता है-

''लाभ-हानि, उत्थान-पतन यह, जग का लेखा-जोखा है।
सुख के दिन वे बीत चले अब, लगता सब कुछ धोखा है ॥''[2]

कवि ने कहीं-कहीं अपनी लोकभाषा अवधी का भी प्रयोग किया है। जिससे काव्य में लालित्य का चमत्कार अपने आप आ गया है, जो इस प्रकार है-

''चमचम-चमचम चमके चपला, बूँदे झुक झुक गायें रे।
उमड़-घुमड़ कर बदरा गरजे, मोरवा शोर मचाये रे ॥''[3]

द्वितीय सर्ग 'मथुरा से गोकुल' तथा तृतीय सर्ग 'कृष्ण-जन्मोत्सव' अच्छे बन पडे हैं। चतुर्थ सर्ग 'पूतना-वध' में पूतना, बकासुर, वृषभासुर आदि के वध का वर्णन प्रशंसनीय है। इसके लिए 'व्यथित'जी बधाई के काबिल हैं, किन्तु ऐसा लगता है कि कवि को दूध-मलाई बहुत पसन्द है। जो कि निम्नलिखित छन्द से पता चलता है, किन्तु दहीं का नाम कहीं भी नहीं लिया।

''बड़े-बड़े जो संकट आते, उन्हें पार कर जाता था।
खाकर दूध-मलाई गायें, नित्य चराने जाता था ॥''[4]

इस संदर्भ में एक और छंद प्रस्तुत है-

''छोटे-छोटे ग्वालों के संग, मिलकर खेल रचाता था।
माखन-मिसरी, दूध-मलाई, बाँट-बाँट कर खाता था ॥''[5]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की निम्नलिखित पंक्तियाँ में सूरदास जी का प्रसिद्ध पद ''मैया, मैं नहीं माखन खायो। भोर गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायो। चार पहर बंसीवट भटक्यो, साँझ परे घर आयो।'' स्मरण आ गया। इस पद से संबन्धित कवि की पंक्तियाँ इस प्रकार है-

''लाठी-कमरी लिए साथ में, गाय चराने जाते थे।
दिन भर गाय चराते फिरते, साँझ पड़े घर आते थे ॥''[6]

आगे डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने गायों के नाम देकर एक सराहनीय कार्य किया है। इस छंद से प्राणि मात्र के प्रति आत्मीयता प्रतिभाषित होती है।

''काली-कबरी, गंगा-गौरी, ये सब उनकी गायें थीं।

गायों से अति प्रेम उन्हें था, सचमुच की वे मायें थीं ॥''[7]

पंचम सर्ग में विश्वरूप-दर्शन का मनोरम वर्णन किया गया है। षष्ठ सर्ग शीर्षक 'कालि-मर्दन' न होकर 'कालिया मर्दन' होता तो उत्तम होता। सप्तम सर्ग भी उत्तम है। अष्टम सग4 में गोवर्धन पूजा को आधुनिकता का जामा पहनाने का कवि ने प्रयास किया है। जो संघ-शक्ति के महत्त्व को दर्शाता है।

नवम् सर्ग 'कंस-वध' से सम्बंधित है। श्रीमद् भागवत् गर्ग संहितादि में कृष्ण ने मथुरा में प्रवेश कर कई लोगों पर कृपा की और दुष्टों मुष्टिक चाणूर, कुवलयापीड़ आदि का संहार किया। साथ ही कंस का वध भी किया था परंतु कविवर ने 'बालकृष्ण' खण्ड-काव्य में अन्य का वध न कराकर सिर्फ कंस-वध ही दिखाया है।

दसम् सर्ग 'मुक्ति का है, जिसमें देवकी-वसुदेव का कारागार से मुक्ति मिली। महत्वपूर्ण बात यह है कि इस सर्ग में डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी ने अपने बहुमूल्य विचार प्रकट किये है। कविवर 'व्यथित' जी का आह्वान है-

''हम भी कृष्ण सरीखे सेवा, त्याग-भाव के लिए जिएँ।
जीवन में कटुता को तजकर, प्रेम-सुधा शत बार पिएँ ॥''[8]

इसी संदर्भ में एक और छंद प्रस्तुत है-

''आओ फिर तो जाति की, मुक्ति हेतु संकल्प करें।
प्रेम-नेम जन हित हत देखें, नहीं किसी से वैर करें ॥''[9]

इस 'बाल-कृष्ण' खण्ड-काव्य में गोवर्धन-पूजा को मौलिक संगठन का प्रतिक बनाकर रूढ़िवाद का खण्डन किया है और 'जय जवान, जय किसान' का नारा बुलन्द कर सहयोग का महिमा गान किया गया है। यह संगठन सहयोग को

आधुनिक सन्दर्भ प्रदान कर रहा है। इसमें प्रेम, मैत्री, बन्धुत्व और विवेक आदि भावों का भी मनोहर वर्णन हुआ है। देखिये-

''छोटे-छोटे ग्वालों के संग, मिलकर खेल रचाता था।
माखन-मिश्री, दूध-मलाई, बाँट-बाँट कर खाता था॥''[10]

एक और छंद प्रस्तुत है-

''ऊँच-नीच का भेद नहीं था, सबको गले लगाता था।
'बड़े बाप का बेटा हूँ मैं', यह भी नहीं बताता था ॥''[11]

'बालकृष्ण' खण्ड-काव्य बालकों में ज्ञान, भक्ति और कर्म का त्रिवेणी-संगम प्रस्थापित कर उनकी नैतिकता को जागृत करने में सफल है। इस खण्ड-काव्य में वात्सल्य रस, करूण रस, वीर रस, रौद्र रस, अद्‌भूत रस, शान्त रस की अभिव्यक्ति क्रमश: सर्गो में बड़े ही प्रभावशाली ढंग से हुई है। इन रसों की सरल और मनोहारी अभिव्यक्ति में कविवर 'व्यथित'जी की लेखनी ने कमाल कर दिया है। इस बालकाव्य में संस्कारिता स्थान-स्थान पर सुमन की तरह हँसती नज़र आती है। गेय छन्द में लिखी गई है।

इस खण्ड-काव्य की भाषा सरल और प्रसाद-गुण सम्पन्न है। इसमें शब्द सुपरिचित और कल्पना मनोहर है। छन्द यति गति से सुसम्बन्ध है। छन्द में कहीं-कहीं मुहावरें और कहावतों का प्रयोग जान डाल देता है। सोलह पद्यों पर ''दु:ख भंजक सुख-सम्पति राशी, जय बोलो घनश्माम की'' की टेक कविवर डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की भी जय बोलती हुई प्रतीत होती है।

संदर्भ-सूची

1) प्रधान संपा. डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/47.

2) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - बालकृष्ण, पृष्ठ-02.

3) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - बालकृष्ण, पृष्ठ-08.

4) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - बालकृष्ण, पृष्ठ-26

5) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - बालकृष्ण, पृष्ठ-26.

6) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - बालकृष्ण, पृष्ठ-28.

7) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - बालकृष्ण, पृष्ठ-28.

8) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - बालकृष्ण, पृष्ठ-66.

9) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - बालकृष्ण, पृष्ठ-67.

10) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - बालकृष्ण, पृष्ठ-26.

11) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी - बालकृष्ण, पृष्ठ-27.

"राघवेन्द्र"- (खण्ड-काव्य)

"राघवेन्द्र" डॉ. 'व्यथित'जी द्वारा रचित एक सफल खण्ड-काव्य है। 'राघवेन्द्र' में 'रामचरित मानस' की ही भाँति कुल '8' (आठ) सर्ग है। 'रामचरित मानस' की भाँति 'राघवेन्द्र' में भी कथा विस्तार परिलक्षित नहीं होता । इस खण्ड-काव्य में डॉ. 'व्यथित' जी का मुख्य उद्देश्य राम के व्यक्तित्व को उजागर करना है । तुलसीदास की भक्ति भावना को देख 'व्यथित' जी अध्याधिक भावुक हो गए हैं और उन्होंने राम के व्यक्तित्व को मयार्दा पुरुषोत्तम की ऊँची मंजिल तक पहुँचाने का काम किया है। डॉ. 'व्यथित'जी के जो राम हैं, वह न्याय के सागर है। आज भारत वर्ष को अवध बिहारी राम की नहीं परन्तु न्याय सिन्धु राम की आवश्यकता है।

यहाँ पर डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी 'राघवेन्द्र' खण्ड-काव्य में गुरू की वन्दना न करते हुए श्री राम की कथा का वर्णन किये हैं। प्रथम सर्ग में उन्होंने राम कथा को अमृत का प्याला बताया है। जिससे सांसारिक तृष्णा बुझ सकती है। काव्य का प्रारम्भ करते हुए **डॉ. 'व्यथित' जी लिखते हैं -**

"त्रेता-युग की बात पुरानी, रघुकुल में जन्मे श्री राम ।

दुष्ट-दलन-सज्ञन-मन-रंजन, प्रकट हुए करुणा के धाम॥"[1]

तत्पश्चात् डॉ. 'व्यथित' जी कोशल नरेश महाराज दशरथ की व्यथा को प्रकट करते हुए कहतें हैं-

"स्याही गई सफेदी आई, घर-घर चर्चा चलती थी।

नहीं कोई उम्मीद पुत्र की, ऐसी चिन्ता पलती थी ॥"[2]

डॉ. जयसिंह जी नगर में रहने वाले नर-नारी और पुरूजन के दु:खों को प्रकट

करतें है। महाराज दशरथ अपने कुल गुरू के पास जा कर पुत्र प्राप्ति का मार्ग पूछते हैं। तपोबल के द्वारा फल की प्राप्ति होती है-

''जप–तप–यज्ञ आदि के बल पर, मीठे फल जो लाये थे।

राजा को दे उन्हें स्नेह से, विधि–विधान समझाये थे ॥''[3]

बाद में आगे का वर्णन यह है कि तीनों रानियों के बीच में प्रसाद के रूप में बाँटा जाता है। फल के प्रादुर्भाव से तीनों रानियों को गर्भ होता है और चार पुत्रों का जन्म होता है।

कु. प्रज्ञासिंह 'रश्मि' का कथन है कि -''मनीषियों ने 'कवि ' को स्वयंभू कहा है। जिस प्रकार विधाता-जीव-जगत की सृष्टि करने के कारण पूज्य हैं, उसी तरह कवि भी भाव-जगत की सृष्टि के कारण वन्दनीय है। ब्रह्मा जहाँ शरीर में चेतना का संचार करता है, कवि वहीं मन को ऊर्जा प्रदान करता है। कवि इतिहास का उद्गाता ही नहीं, लोकहित चिन्तक भी होता है। उत्तम काव्य मस्तिष्क प्रधान नहीं, हृदय प्रधान होता है। 'संवेदना' काव्य का प्राण है, पीड़ा काव्य की जननी है। प्रेम पीड़ा का समाधान है। 'प्रेम और पीड़ा' कवि के प्रतिपाद्य हैं। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'का हृदय लोक व्यथा से पीड़ित है। समाज की विसंगतियाँ उन्हें कुरेदती रहती है। ऊँच-नीच, छुआ-छूत, जाति-पांति, भेद-भाव, शोषण- झूठ-फरेब उन्हें कतई पसन्द नहीं। सर्वोदयी विचार धारा के पोषक 'व्यथित' का जीवन दलितों, शोषितों पीड़ितों की सेवा में समर्पित है। सच्चे अर्थों में वे जमीन से जुड़े हुए समर्थ कवि हैं।''[4]

'राघवेन्द्र' डॉ. 'व्यथित' जी द्वारा रचित एक सफल खण्ड-काव्य है। राम कथा को आधार बनाकर अनेक भाषाओं में 'रामायण' नाम से विपुल ग्रंथों की

रचना हुई है, फिर भी 'व्यथित'जी ने इस खण्ड-काव्य का नाम 'राघवेन्द्र' क्यों रखा? 'राघव' कहा जा सकता हैं, किन्तु 'राघवेन्द्र' तो केवल 'राम' ही हो सकते है। 'राम' रघुकुल भूषण हैं। अस्त्र-शस्त्र, धर्म-दर्शन-तप- त्याग, ज्ञान-विज्ञान के साथ कर्तव्य और अधिकार का समन्वय, संस्कृति और मर्यादा के संरक्षण का गौरव जो श्री रामचन्द्र को मिला वह किसी और रघुवंशी को नहीं मिला है। इसीलिए श्रीराम कालान्तर में रघुपति, रघुनाथ, राघव, रघुनन्दन तथा राघवेन्द्र कहलाए, जिन कार्यों ने 'राम' को मर्यादा पुरुषोत्तम के पद पर प्रतिष्ठित किया, उसी का बोध कराना डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी की इस रचना का हेतु है।

अभिशापित अहल्या की पारम्परिक कथा पर नवीन दृष्टि रखने वाले डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी यह नहीं मानते की अहल्या पत्थर की चट्टान के रूप में पड़ी थी। वस्तुत: उपेक्षित जीवन से त्रस्त उस परम तपस्विनी का मन पत्थर सा हो गया था। 'पत्थर का कलेजा होना' मुहावरा सम्भव: अहल्या से ही समुद्भूत है। 'पहुँच आश्रम देख हालत, नारी थी जो सिला समान' कह कर कविवर यह स्पष्ट कहना चाहता है कि वह नारी शिला-सदृश हो गयी थी, पत्थर की शिला नहीं थी। निर्दोष अहल्या सुराधिपति की हविश (हवश)की शिकार, कुल-कुटुम्ब, देश-समाज द्वारा परित्यक्त थी। स्नेह-सोहार्द, सहानुभूति की भूखी अहल्या अपनी अभिशप्त जीवन बीता रही थी। श्री रामचन्द्र ने अपने चरणों से ठोकर मारकर किसी सिला को नारी बना दिया था, यह भ्रान्ति पालना ठीक नहीं है। कवि का कहना यह है कि श्रीराम की अपनत्वभरी मीठी वाणी सुनकर वह तपस्विनी स्वयं अपने प्रभु के चरणों पर गिर पड़ी थी-

''सुनकर राम मधुर रस-वाणी, हिली शिला स्पन्दन जारी।

युग के ताप-शाप की मारी, हुई श्याम, सुन्दर सुकुमारी ॥''[5]

इसी संदर्भ में एक और द्रष्टांत देखिए-

"उठ बैठी चरणों की दासी, चरण-कमल-रज प्रेम सभर था।

स्वयं कुँआ उठ प्यास बुझाये, ऐसा अवसर और कहाँ था॥"[6]

सम्पूर्ण काव्य के इतने बड़े भाग पर 'अहल्या' का कब्जा यह साबित करता है कि कवि की अन्तर्व्यथा मुख्यत या अहल्या की पीड़ा पर केन्द्रित है। श्री रामचन्द्र के व्यक्तिगत जीवन से उनका सार्वजनिक जीवन अधिक महत्वपूर्ण है तभी तो धनुर्भंग '6' छन्दों में, राम विवाह '5' छन्दों में सीता-जन्म और सीताहरण का मात्र एक-एक छन्द में वर्णन करके बाकी के छन्दों में कवि निषाद राज गुह, शबरी, जटायु, सुग्रीव आदि पर की गई कृपा का गुनगान करता दिखाई देता है।

इस ख़ण्ड-काव्य में 'व्यथित'जी ने पुष्ट तर्कों के माध्यम से पूर्वाग्रही समाज से नारी के अधिकारों की उपेक्षापूर्ण सोच के प्रति न्याय की याचना करवाया है। कविवर कहते हैं कि नीरी कोई खिलौना नहीं जिससे नर आजीवन खिलवाड़ करता रहे। नारी को 'दया' की भिक्षा नहीं किन्तु 'न्याय' चाहिए और साथ ही साथ समानता का अधिकार चाहिए। इस संदर्भ में डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी ने लिखा है-

"दया नहीं या भीख नहीं कुछ, केवल उसको न्याय चाहिए।

जीवन के अस्तित्व हेतु बस, समता का अधिकार चाहिए॥"[7]

'राघवेन्द्र' के पाँचवे सर्ग में राम एक संस्तुति पत्र लिखकर अहल्या को विष्णुलोक भेजते हैं क्योंकि इन्द्र के विरूद्ध में मुकदमा विष्णु की अदालत में ही किया जा सकता है। लोक-अदालत के फैसले से उत्साहित होकर अहल्या बेरोक टोक ब्रह्मलोक पहुँच जाती है। वह ब्रह्मा की पुत्री है। पितृ कुल में न्याय मांगना

सर्वथा उचित ही है। देव लोक के अभियुक्त को नोटिस जारी होती है। अपराधी देवराज इन्द्र अदालत में हाजिर होता है। इन्द्र को किसी अधिवक्ता की आवश्यकता नहीं है। बिना किसी बहस के ही 'इन्द्र' अपना अपराध स्वीकार कर लेता है। वह अहल्या से क्षमादान चाहता है। अंत में न्यायधीश विष्णु फैसला अहिल्या पर ही छोड़ देते हैं-

''न्यायासन से विष्णु जी बोले, देवि कहो क्या कहती हो।

इनका निर्णय तुम को करना, दुःख इनके तुम सहती हो॥''[8]

इसी प्रकार एक और द्रष्टांत प्रस्तुत है-

''इच्छा हो तो मुक्त करो या, शूली पर लटकाओ तुम।

मिली तुम्हें हैं पूर्ण स्वतन्त्रता, जी भरकर तड़पाओ तुम॥''[9]

अहल्या के नखक्षत से आहत इन्द्र के घावों से दुर्गन्ध आ रही थी। इन्द्र हाथ जोड़े क्षमा याचना की मुद्रा में खड़ा था। अहल्या की यह नैतिक विजय थी। विजय से अभिभूत अहल्या के हृदय में सहज करूणा का सिन्धु हिलोरे लेने लगता है। वह अपने अपराधी को केवल क्षमा ही करती किन्तु उसके घावों की मरहम पट्टी भी करती है। **अहल्या कहती है – 'जान नहीं, मैं शान मारती।'** इस खण्ड-काव्य में अभिशप्त और सन्तप्त जीवन जीने पर विवश करने वाले के प्रति असीम उदारता दिखाकर गौतमी ऋषी की पत्नि अहल्या लोकवन्दनीय बन गई। वह अपने सतीत्व के बल पर इन्द्र को वरदान देकर उसके सहस्त्र ब्रणों को नेत्रों में परिवर्तित कर दिया। इस प्रकार 'इन्द्र' सहस्त्र लोचन बन गया।

अपराधी को अपराध का बोध हो जाने के बाद राजा को बहुकोणीय दृष्टिवाला होना ही चाहिए। ब्रह्म लोक की सभा विसर्जित होने के पश्चात लोकतन्त्र की

मर्यादाओं के परिपालन का आश्वासन देकर 'इन्द्र' देवलोक की तरफ प्रस्थान करता है और अहल्या अपने आश्रम वापस लौट आती है। वहाँ अहल्या का सार्वजनिक अभिनन्दन होता है। कवि द्वारा अहिल्या की प्रतिष्ठा की पुनरस्थापना सचमुच राम को 'राधवेन्द्र' बना देती है।

जनक-पालिता सीता के असली खान-दान का पता न होते हुए भी श्रीराम ने उन्हें अपनी पत्नि बनाया। यह भी एक क्रान्तिकारी कदम था और नई सामाजिक व्यवस्था की स्थापना थी। इस संदर्भ में कवि लिखता है-

''अज्ञात-गोत्र कुल-शीला सीता, पत्नी उसे बनाये थे।

नई चेतना नई व्यवस्था, नया मार्ग अपनाये थे ॥''[10]

कैकयी माता के वरदान स्वरूप मिले वनवास को स्वीकार करके राम, सीता और अनुज लक्ष्मण के साथ प्रस्थान करते हैं। वे हीन वर्ण निषादराज गुह को सीने से लगाकर उसे सम्मान देते हैं। राम ने शबरी के जूठे बेर खाकर उसकी सेवा स्वीकारते हैं और छुआ-छूत व भेदभाव की खाई पाटकर सामाजिक समरसता की सृष्टि करतें है। वे 'जटायु' को कर स्पर्श से चिर शान्ति प्रदान करते हैं और पितृत्व उसका दाह संस्कार कर उसकी मुक्ति का द्वारा खोलते हैं। बालि को उच्च पद देकर सुग्रीव की मित्रता का निर्वाह करते हैं। वनवासी राम जन-मन अधिवासी जनवासी हो जाते थे। इसी तरह-

''राम नहीं वनवासी वे जो, जंगल के जनवासी थे ।

चौदह वर्ष का तप-बल उनका, जन-मन के अधिवासी थे ॥''[11]

इसी संदर्भ में एक और द्रष्टांत प्रस्तुत है-

''देख भरत की हालत नाजुक, राम फफक कर रोये थे।

बन्धु-प्रेम की गहराई में, सुध बुध खोएँ थे ।।''[12]

जितेन्द्र बहादुर गिरि का कथन है कि– ''राघवेन्द्र में कवि ने भगवान राम को महान क्रातिंकारी और युगस्त्रष्टा के रूप में देखा है। राम प्राणी-जगत में नई चेतना के प्रतिक, सबसे प्रिय एवं हितैषी है। राम सभी भेदों से परे अभेद है। कवि राम के सभी अनुयायियों से भी यही कहता है कि आप भेद की समस्त दीवारों को तोड़कर अभेद का नव निर्माण कर समन्वित जीवन जीने की संकल्पना करें। 'राघवेन्द्र' कृति एक महान क्रांतिकारी श्रेष्ठ युगस्त्रष्टा एवं नई चेतना के प्रतीक श्री रामचन्द्र जी के अमूल्य जीवन काल का आधुनिक यथार्थ है। राम के भक्तों द्वारा राम का निरन्तर गुणगान किया जाता है, घर-घर एवं समग्र वर्ष में रामायण के अखण्ड पाठ आयोजन किया जाता है।''[13]

मेरे मंतव्य से डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी शक्ति को आधार मानकर 'राघवेन्द्र' कृति का प्रणयन किया है। श्री रामचन्द्र के जिस व्यक्तित्व को व्यथित जी ने उभारने का प्रयत्न किया है उसी रूपको वे समग्र देश की जनता तक पहुँचाना चाहते हैं। श्री राम के प्रति पूर्व-प्रचलित लोक धारणा को व्यक्त करते हुए डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी ने अपनी नवीन दृष्टि जोड़कर राम के महत्व को और अधिक बढ़ा दिया है। 'राघवेन्द्र' नवीनतम शैली में लिखा गया एक नवीनतम छंदोबद्ध खण्ड-काव्य है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी ने इस खण्ड-काव्य द्वारा क्रान्तिकारी राम का आह्वाहन किया है। आज भी राक्षसी प्रवृतियाँ प्रबल होती जा रही हैं। इसी कारण काम, क्रोध, मद, मोह, वश मनुष्य पथ-भ्रष्ट होता जा रहा है। मानव धर्म- कर्म से विमुख होकर मानवता का परित्याग करता जा राह है। अमानवीयता पर काबू पाने की अब जरूरत है। राम की चर्चा करने वाले राम भक्तों का उत्तरदायित्व है

कि वे अब अहंकार रहित राम के आदर्शों का पालन करते हुए अन्यय के प्रति विरोध करने का प्रयत्न करें। सीर्फ राम-राम जपने से राम राज्य की स्थाना करना संभव नहीं है। श्री राम के द्वारा स्थापित सामाजिक मूल्यों एवं मान्यताओं के बल पर ही समुन्नत समाज की संकल्पना की जा सकती है। श्री रामचन्द्र की तरह अहंकार और अन्यय पर विजय प्राप्त करने के लिए राम की स्तुति अनिवार्य है। राम का नाम का मन्त्र जपने से अच्छा है कि राम के द्वारा बताये गए आदर्शों का पालन किया जाय-

''अहंकार अन्याय सभी पर, काबू पाने आये थे।
काम-क्रोध -मद- लोभ-मोहको, मुट्ठी में ही पाये थे।
यही राम का मंत्र महान्, जय रघुनन्दन जय सियाराम ॥''[14]

इस खण्ड-काव्य में डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का मुख्य उद्देश्य राम का महनीय व्यक्तित्व को उजागर करना है। 'व्यथित'जी ने राम के व्यक्तित्व को मर्यादा पुरुषोत्तम की ऊँची मंजिल तक पहुँचाने का काम किया है। कवि के राम न्याय के सागर है। भारत वर्ष को अवध बिहारी राम की नहीं किन्तु न्याय सिन्धु राम की जरूरत है। आज के युग में भी अहल्या की तरह शिला बनी नारी न्याय हेतु राम की प्रतीक्षा कर रही है। त्रेता युग में तो अन्याय एवं शोषण की शिकार अहल्या एक मात्र महिला थी किन्तु आज तो अहल्या की तरह अनाचार की शिकार अनगिनत महिलाएँ हैं न घर की है और न घाट की । उन्हें न्याय कौन देगा? इस प्रश्न के उत्तर के लिए कवि 'व्यथित'जी ने 'राघवेद्र' जैसी चेतनावादी कृति का सृजन किया है। इस समस्या को उजागर करने का प्रयत्न किया है-

''धरती की इस हाल यही नित, जुल्मों की होती बरसात।

सबल निबल पर हावी होकर, करते हैं, निर्दय अघात॥''[15]

इसी प्रकार एक और दोहा देखिए-

''वैसा ही यह जुल्म भयंकर, न्याय नहीं मिल पाया है।

न्याय के खातिर तड़प रही मैं, न्याय का सागर आया है ॥''[16]

पत्थर की शीला बनी अहल्या देखती है कि न्याय के सागर श्री रामचन्द्र आ गए हैं उसका उद्धार करने के लिए। अहल्या भारी मन से श्री राम को अपनी करूण कथा सुनाती है और उनसे कहती है कि उसका दोष मात्र इतना ही था कि वह अबला नारी थी। पुरुष प्रधान समाज में नारी की अवहेलना और उस पर थोपे गये आरोप झूठे और निराधार थे। डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी की अहल्या मात्र अपने उद्धार के लिए नहीं पर समग्र नारी समाज के उद्धार के लिए न्याय की याचना करती है। आज भी नारी को खिलौना समझकर पुरुष प्रधान समाज खेल रहा है। त्रेता युग की अहल्या और कलयुग की 'राघवेन्द्र' कृति की अहल्या में काफी अन्तर है। डॉ. 'व्यथित'जी इस संदर्भ में लिखते हैं-

''एक अहिल्या नहीं अरे यह, लाखों की है करूण कथा।

जिधर उठा के नजर देखते, वहीं सिसकती खड़ी व्यथा ॥''[17]

इसी तरह-

''दया नहीं या भीख नहीं कुछ, केवल उसको न्याय चाहिए।

जीवन के अस्तित्व हेतु बस, समता का अधिकार चाहिए।

जिससे नारी बने महान्, जय रघुनन्दन जय सियाराम ॥''[18]

पाण्डेय आशुतोष का कथन है कि -''कविवर 'व्यथित' जी की रचनाओं को

यदि शास्त्रीय कसौटी पर आप न कसें तो उनमें आपको वही रस प्राप्त होगा जो सरभंग सम्प्रदाय के कवियों में व्याप्त है। भाव जब भक्ति रस, में ओत-प्रोत हो जाता है तो भाषा सहज हो जाती है। च्येष्टित कविताएँ न हृदय को छूती हैं और न ही मस्तिष्क को। इसी संदर्भ में एक उदाहरण प्रस्तुत है -

भाव-भजन जो करता दिल से, राम उसे मिल जाते थे ।

मिलकर उसकी बन्दि काटते, सागर से लहराते थे ।।''[19]

इसी प्रकार-

''शबरी एक भीलनी वन में, उठकर सुबह नहाती थी,

सपनों में थी राम देखती, नयनन नीर बहाती थी।

कहती कब मिलिहैं प्रभुराम, जय रघुनन्दन जय सियाराम ।।''[5]

'राघवेन्द्र' खण्ड-काव्य में वात्सल्य, शान्त, वीर एवम् करूण रस के पात्र भरे हैं। इस कृति को पाठक पढ़कर भाव विभोर हुए बिना नहीं रह सकता। छोटे छन्दों में बना 'राघवेन्द्र' खण्ड-काव्य के अन्तिम सर्ग में 'व्यथित'जी कहते हैं-

''जीवन की हर कला राम में, राजनीति-विज्ञान भरा है,

दीपक हैं वे धर्म-कर्म के, धन-दौलत अभिराम धरा है ।

धरे राम को कसकर फिर तो, जय रघुनन्दन जय सियाराम ।।''[21]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित समकालीन 'राघवेन्द्र' कृति समाज और देश को जागृत करने वाली एक अमूल्य चेतनावादी कृति है। इस उपलब्धियों को हमें जन-जन तक पहुँचाना है। राम का व्यक्तित्व निराला था। वे किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखते थे, जो भी राम की शरण में आता वे उसका उद्धार करते

थे। श्री रामचन्द्र ने अहल्या, शबरी, जटायु, केवट इन सबका उद्धार किया था। आज का मानव भी राम के आदर्शों का अनुसरण करके महान कार्य कर सकता है। राम के जीवन से हम हर प्रकार की शिक्षा मिलती है। आज की परिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, राजनैतिक सभी समस्याएँ राम के आदर्शों से हल हो सकती हैं। कविवर माँ सरस्वती की कृपा का आभार मानते हुए - श्री रामचन्द्र की वंदना करते हुए यह चाहता है कि हर स्थिति में राम हमारे साथ रहें जिससे समाज और देश का उत्थान हो-

''जिससे करूं वन्दना पुनि-पुनि, माँग रहा वर भाई,
सत चिन्तन में साथ राम हों, और तेरी अगुवाई ।
आगे-पीछे रामहि-राम, जय रघुनन्दन जय सियाराम ॥''[22]

'राघवेन्द्र' खण्ड-काव्य में 'व्यथित'जी राम-जन्म से लेकर सीता-हरण तक की घटनाओं का ही संक्षिप्त वर्णन किया है। कविवर ने रावण-वध और सीता-मुक्ति का उल्लेख न करके शायद यह बताना चाहता है कि अपनी पत्नि के अपहर्ता की हत्या के कारण 'राधवेन्द्र' नही कहलाएँ, बल्कि अहल्या, शबरी, जटायु की मुक्ति और निषादराज गुह तथा वनराज सुग्रीव की प्रीति के कारण ही उन्हें 'राघवेन्द्र' कहा जाता है। घटनाओं का सविस्तार वर्णन भी 'व्यथित' जी का लक्ष्य नहीं। कथा-सूत्र को बांधने के लिए अपेक्षित घटनाओं का संकेत मात्र ही करता हुआ कविवर इस कथा में आगे बढ़ जाता है।

इस खण्ड-काव्य में राम जन्म का प्रसंग 11 छन्दों में, राम जन्मोत्सव 11 छन्दों में, बाल-वर्णन 23 छन्दों में लिखकर कवि की लेखनी अपने मूल लक्ष्य की ओर तेज गति से आगे बढ़ती हुई प्रतीत होती है। 'नारी मुक्ति आन्दोलन' के

पक्षधर डॉ. 'व्यथित'जी का हृदय अभिशप्त 'अहल्या' की पीड़ा से संत्रस्त है। वे इस चिर उपेक्षिता नारी को मुक्त कराने के लिए इतने आकुल हैं कि श्री रामचन्द्र के विद्याध्यनन को 20 छन्दों में तथा गुरू विश्वामित्र के आश्रम में यज्ञरक्षार्त राक्षसों के संहार का वर्णन 18 छन्दों में ही करके अपने प्रधान कथ्य पर पहुँच जाते हैं। कुल 362 छन्दों वाले इस खण्ड-काव्य में 109 छन्द के अहिल्योद्धार के प्रकरण में है, जो सम्पूर्ण काव्य का लगभग एक तिहाई है। इस खण्ड-काव्य में कुल 8 सर्ग है, जिसमें दो सर्गो में केवल 'अहल्या' की ही चर्चा है। जो कुल सर्गों की एक चौथाई संख्या है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित 'राघवेन्द्र' उच्च कोटि का उत्तम खण्ड-काव्य है। यह कृति पठनीय भी है और अनुकरणीय भी। वर्तमान काल में नारियों को अभिशप्त जीवन जीने व नारकीय सड़ान्ध में पड़ने को विवश करनेवालों को समझाना होगा। प्रभुता समपन्न शासनाध्यक्षों को 'इन्द्र' का प्रतीक मानकर उन्हें उनके अपराध बोध की स्वीकारोक्ति के लिए विवश करके न्यायालय द्वारा दण्डित करवाना होगा। अन्याय, अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष छेड़ना हमारा परम धर्म है। हमें गिरी हुई जातियों को गले से लगाना होंगा, दलितों उपेक्षितों, शोषितों के प्रति सच्ची सहानुभूति रखनी होगी। यदि हम ऐसा कर सके तो कवि 'व्यथित'जी का श्रम सार्थक होगा।

संदर्भ-सूची

1) प्रधान संपा. डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/37.

2) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-28.

3) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-28.

4) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-32.

5) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-43.

6) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-43.

7) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-53.

8) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-90.

9) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-74

10) प्रधान संपा. डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-5/41.

11) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-19.

12) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-29.

13) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-29.

14) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-32.

15) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-32.

16) प्रधान संपा. डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-79.

17) प्रधान संपा. डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ-79.

18) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-90.

19) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-राघवेन्द्र, पृष्ठ-91.

कैकेयी के राम- (खण्ड-काव्य)

डॉ. 'व्यथित'जी द्वारा रचित 'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य सन् 1994 में प्रकाशित हुई थी। 'कैकेयी के राम' की रचना पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि डॉ. 'व्यथित'जी ने इसका प्रारंभ 'वन्दना के स्वर' तथा 'मंगला चरण' से किया है। वन्दना व मंगला चरण के पश्चात् कविवर ने राम कथा का वर्णन 'अवध सर्ग' में प्रारम्भ करके 'मिलन सर्ग, में समाप्त कर दिया है। प्रस्तुत काव्य-खण्ड में कुल चार सर्ग हैं -प्रथम अवध सर्ग, द्वितीय चिन्तन सर्ग, तृतीय विरह सर्ग, और चतुर्थ मिलन सर्ग।

इस रचना में डॉ. 'व्यथित'जी के मानवीय चिंतन और सूक्ष्म विचारों को भाषा प्रौढ़ता के साथ प्रकट करते हैं। इस खण्ड- काव्य कृति में भारतीय संस्कृति की जीवन और अस्मिता की आस्थामयी दृष्टि के दर्शन होते हैं। त्रेता युग के राम लोकमंगल और मर्यादावादी पूर्ण पुरुषोत्तम होने के साथ-साथ सुख-दु:ख में सहानुभूति रखतें हैं। इसी वजह से राम सनातन काल से अखिल ब्रह्माण्ड के आराध्य हैं। डॉ. 'व्यथित' जी इस खण्ड-काव्य में कैकेयी के राम बनकर भक्ति और श्रद्धा की दिप जलाते हैं। डॉ. 'व्यथित' जी राम कथा के प्राचीन संदर्भ में परिवर्तन करके कई मानवीय स्पर्श देता हुआ समय पर छाई हूई जहरीली धुंध को हटाने का प्रयत्न करता है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी 'कैकयी के राम' खण्ड- काव्य में यह सिद्ध करना चाहते हैं कि वर्षो से शापित, तापित, तिरस्कृत, उपेक्षित, और खलनायिका के रूप में मानी जानेवाली कैकेयी वास्तव में विरल महान नारी थी। कई बार समाज में व्यापक जन मंगल के लिए अप्रियवाणी और कटु व्यवहार करने के लिए किसी एक को पूरे साहस और हिंमत के साथ जिम्मेदारी उठानी पड़ती है। कैकेयी रानी ने

राम की गूढ़ लीलाओं में साथ देने के लिए ही जन्म लिया था। सौ बार धन्य वह एक लाल की माई से विभूषित कैकेयी निष्कलुष सिद्ध होती है। उसी तरह 'व्यथित'जी ने भी इस खण्ड-काव्य में कैकेयी जन्म से ही कल्याणी और शक्ति की प्रतिमूर्ति है इन शब्दों में ऐसी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए लिखते हैं कि-

''किन्तु मनोबल ऊँचा उसका, धीर, वीर क्षत्राणी थी,

धरती के उत्कर्ष हेतु ही जन्मी माँ कल्याणी थी।''[1]

''कर्मभूमि की ओर बढ़ी वह, शक्ति समर्पित मानी थी। ''[2]

'कैकयी के राम' खण्ड-काव्य में मैंने यह पाया कि राम कथा अति प्राचीन है। वेदों में 'राम' शब्द का उपयोग किया गया है। परंतु राम का संपूर्ण विवेचना 'महर्षि वाल्मीकि' द्वारा रचित 'रामायण' से आरंभ हुआ। महाकवि कलिदास ने 'रघुवंश' को प्रस्तुत की और सम्पूर्ण रघुकुल की कीर्ति को जन-जन तक पहुँचाया। 'गोस्वामी तुलसीदास जी' ने 'श्री राम चरित मानस' की रचना की। इस रचना में राम की सार्वभौमिक जीवन-प्रक्रिया का संपूर्ण वर्णन किया है। 'केशवदास जी' ने 'रामचंद्रिका' की रचना की। भगवान राम सम्बन्धित लगभग सभी ग्रंथकारों ने यह माना है कि माता कैकेयी राम के प्रति सर्वाधिक अनुरक्त रहीं तथा राम भी माता के सामीप्य रहे।

'गोस्वामी तुलसीदास' ने 'श्री राम चरित मानस' में यह स्पष्ट किया है कि देवताओं ने माता कैकेयी की मति को परिवर्तित करने के लिए माता सरस्वती से वारंवार प्रार्थनाएं की। माता सरस्वती ने देवताओं की प्रार्थना को स्वीकृति नहीं दी किन्तु माता सरस्वति द्वारा यह स्पष्ट करने पर कि यदि कैकेयी की मति में परिवर्तन नहीं लाया गया तो असुरों का वध कैसे होगा ? भगवान राम का तो अवतरण ही

लोक कल्याण के लिए हुआ है। इस बात पर माता सरस्वती किसी भाँति अपना समर्थन देते हुए माता कैकेयी की विश्वसनीय सेविका मंथरा को अपयश की पिटारी बनाकर उसकी बुद्धि को फेर कर चली गई।

मेरे विचारों में डॉ. 'व्यथित'जी ने अनुग्रह की आभा से अनुप्राणित होकर कैकेयी और राम की वास्तविक अनुशक्ति एवं लक्ष्य को दृष्टि में रखकर व्यवहारिक जीवन में राम को जगत पिता के रूप में प्रतिष्ठापित करने वाली माता कैकेयी को सर्वोच्च स्थान दिया है। इसलिए उन्होंने 'कौशिल्या के राम' न मानकर 'कैकेयी के राम' को स्वीरकार किया है।

प्रथम सर्ग (अवध) : सूर्यवंश में राजा दशरत का सम्पूर्ण लोक में बहुत सम्मान था। राजा दशरथ सत्यवादी, योद्धा, महानवीर, पराक्रमी तथा न्यायप्रिय थे। राजा धन्य-धान्य, मान सम्मान सभी प्रकार से प्रतिष्ठित थें परंतु वे संतति रहित होने से दु:खी रहते थे। राज्य के उत्तराधिकारी का अभाव था। उनकी धर्म पत्नि 'कौशिल्या' नि:संतान होने के कारण दु:खी रहने लगी। अन्तत: राजा दशरथ ने दूसरी विवाह 'कैकेयी' के साथ किया। कैकेयी अत्यन्त सुन्दर, व्यवहारिक, नीतिज्ञ और रण कौशल में निपुण थी पर दुर्भाग्यवश उनसे भी संतान की प्राप्ति नहीं हुई फिर राजा दशरथ ने तीसरी सादी 'सुमित्रा' से किया। तीनों रानियाँ प्रेमपूर्वक रहने लगी। जैसे-जैसे समय गुजरने लगा रानियों के साथ राजा दशरथ और प्रजा की चिन्ता भी बढ़ाने लगी। किसी भी रानी से सन्तानोत्पति नहीं हुई। कुल गुरु वसिष्ठ जी को भी चिन्ता हुई। उन्होंने दो फल लाकर रानी कौशिल्या और रानी कैकेयी को एक-एक फल दिया। कौशिल्या तथा कैकेयी ने अपने फल में से आधा-आधा सुमित्रा को दिया। तीनों रानियाँ गर्भवती हुई। कौशिल्या ने राम, कैकेयी ने भरत और सुमित्रा ने लक्ष्मण व शत्रुध्न को जन्म दिया। चारों पुत्रों के आगमन से सभी

रानियाँ, राजा दशरथ तथा अयोध्यावासी आनंद पूर्वक रहने लगे। राम अभी बालक ही थे कि महर्षि विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को माँगने अयोध्या आ पहुँचे। महर्षि विश्वामित्र का प्रस्ताव सुनकर दशरथ जी विचलित हो गए। कैकेयी ने उनको समझाया कि राम साधारण बालक नहीं है बल्कि राम का अवतरण सौद्देश्य हुआ है। राम पृथ्वी को असुर रहित करके लोक कल्याण करेगा। अत: राम और लक्ष्मण को महर्षि विश्वामित्र को समर्पित कर दें। इस तरह से राम विश्वामित्र जी के सारे संकट को दूर करते हैं। मुनिवर राम और लक्ष्मण को सभी प्रकार की विद्याओं में निपुण करते हैं। विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण जनकपुर जाते हैं। राम चन्द्र जी धनुष्य तोड़ते हैं, सीता को ब्याहकर अयोध्या वापस आते हैं।

द्वितीय सर्ग (चिन्तन):- राजा दशरथ जी राम को राज्य का कार्यभार देकर स्वयं इस जवाबदारी से मुक्त होना चाहते हैं। भगवान राम राजनीति और चतुराई में निपुण हैं। चारों भाईयों मे बड़े हैं। वह जन प्रिय है। राजा दशरथ राम को राज्य देने का स्वयं निर्णय करते हैं। उनको भरोसा है कि उनका निर्णय सबको मान्य होगा। राज्याभिषेक की तैयारी आरम्भ हो जाती है। इस दरमियान दशरथ जी कैकेयी से मिलने जाते है। रानी कैकेयी कोप भवन में पड़ी हुई थी। यह देखकर राजा दशरथ दु:खी हो जाते हैं। रानी कैकेयी को बहुत समझाने का प्रयत्न करते हैं। तब रानी कैकेयी राजा दशरथ को देवासुर संग्राम की विजय में अपने सहयोग तथा उनके द्वारा दिये हुए वचन को याद दिलाती है। राजा दशरथ फिर भी रानी कैकेयी को समझाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु रानी के तर्कों के सामने उनको दिए वचन को पुरा करने का आश्वासन देना पड़ा। राजा दशरथ अपना निर्णय बदलते हैं। पुत्र राम को चौदह वर्षो के लिए वन और पुत्र भरत को राजगद्दी का निर्णय लेते हैं।

तृतीय सर्ग (विरह):-दशरथ जी कैकेयी को दिये गये दो वचन को पुरा करने का निर्णय देकर मूर्छित हो जाते हैं। राम इस समाचार को सुनते ही पिता के पास जाते हैं और उनको समझाने का प्रयास करतें हैं। राम मझली माँ कैकेयी के पास जाते है। माता कैकेयी को चिन्तित देखकर राम माता को चिन्ता मुक्त करने का प्रयत्न करते हैं। राम माता कैकेयी से आशीष प्राप्त करके अन्य माताओं से भी आशीर्वाद लेकर पत्नि सीता और भाई लक्ष्मण के साथ वन गमन करते हैं। उधर राम के विरह में राजा दशरथ प्राण त्याग देते हैं । भरत तथा शत्रुघ्न ननिहाल में है, उनको संदेशा जाता है। वे अयोध्या आकर घटना-क्रम से अवगत होते हैं। भरत के हृदय में माता कैकेयी के प्रति शोभ उत्पन्न होता है। भरत माता कैकेयी को प्रताड़ित करते हैं।

गुरू के समझाने पर भरत अपने पिता राजा दशरथ जी का अंतिम संस्कार करते है। भरत माता कैकेयी, अन्य माताओं के साथ और अयोध्यावासियों को साथ लेकर राम से मिलने चित्रकूट जाते हैं।

चतुर्थ सर्ग (मिलन):- मिलन सर्ग इस काव्य-खण्ड का अन्तिम सर्ग है। इस सर्ग में भरत जी अपने राज-परिवार और अयोध्यावासियों के साथ रामचन्द्रजी से मिलने के लिए चित्रकूट जाते है। लोग विभिन्न सवारियों पर चढ़कर जा रहे हैं परंतु भरत आगे-आगे पाँव के बल ही चल रहे हैं। चित्रकूट पहुँचकर भरत, गुरु वसिष्ठ जी, माता कैकेयी तथा अन्य सभी राम से मिलकर अयोध्या वापस चलने का आग्रह करते हैं परंतु श्री राम जी वन में आने के पीछे लक्ष्य को समझाते हैं। माता कैकेयी और भरत को निर्दोष बतलाते हैं। भरत सभी अयोध्यावासियों के साथ वापस अयोध्या चले आते हैं और श्री राम जी निर्देशानुसार सेवक के रूप में अयोध्या का राज्यभार सँभालते हैं।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अपने रचना 'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य में कैकेयी के चरित्र को एक नए दृष्टिकोण से अंकित करके उसे एक नया रूप दिया है। जिसमें सौतेले बेटे के प्रति दासी 'मंथरा' के बहकाने से रानी कैकेयी को ईर्ष्या पैदा हो जाता है। सरस्वती देवी देव-काज हेतु मतिभ्रम पैदा करती है। डॉ. 'व्यथित' जी की रानी कैकेयी उदात्त चरित्रवाली नारी है। भगवान राम चंद्र जी को जनहित, जगतहित और देव-काज कार्य के उद्देश्य हेतु, पहले स्पष्टता करके अपना वर माँगती है। बल्कि देखा जाये तो अपनी इस मौलिक सूझ के कारण कैकेयी के चरित्र को पूर्णरूप से दोषमुक्त कर, भगवान श्री राम की माँ के गौरव के अनुकूल बना दिया है।

डॉ. 'व्यथित'जी ने मंथरा के चरित्र को भी दोषमुक्त कर दिया है। मंथरा कैकेयी को कहीं नहीं बहकाती। कैकेयी स्वयं राम को बनवास और भरत को राजगाद्दी माँगते दिखाई गई है। जब एक महती उद्देश्य के लिए उसकी इस माँग का सब विरोध करते हैं, तो उस समय रानी कैकेयी को सान्त्वना देने मंथरा दौड़ी आती है। भले हर वह दासी थी परंतु माँ-सी प्रीति बढ़ाई। मंथरा कहती है कि-

''आज भले विपरीत अयोध्या, गुण-गाथा कल गायेगी।
क्रांति-बीज जो बोया तूने, फल उसका वह पायेगी॥''[3]

इसी तरह-

''नाता तेरा मानवता का, मान सहित विष खाया है ।
विष को अमृत कर दे बेटी, मंत्र यही सिखलाया है ॥''[4]

डॉ. व्यथित जी की कैकेयी राम के प्रति ईर्ष्या या द्वेषभाव नहीं रखती। वह तो राम की प्रेरणा-शक्ति है। कैकेयी राम को विश्व-फलक पर अपने पद-चिन्ह्

छोड़ जाने का गौरवमय सन्देश देती है-

''छोटा त्याग बड़ा कुछ देता, निश्चय तू सब पायेगा ।

विश्व फलक पर झंडा तेरा, लहर-लहर लहरायेगा ।।''[5]

डॉ. 'व्यथित'जी आधुनिक कवियों की दीर्धा में दीप्तिमान नक्षत्र का कार्य कर रहे हैं। डॉ. व्यथित जी कवियों को संदेश देते हुए कहतें हैं कि हमें अपनी गौरवमयी संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखना है, पौराणिक-चरित्रों में छिद्रान्वेषण न करके उनके चरित्र का बड़े मनोयोग से शृंगार करना चाहिए। इसका सुन्दरतम् उदाहरण डॉ. 'व्यथित'जी की कैकेयी है, जो राजा दशरथ के विह्वल मन को सम्यक् दिशा प्रदान करती है और राम के मन में क्रांति का बीज बोकर उन्हें हँसकर संघर्ष झेलने की प्रेरणा देती है। यह उसके भाग्य की विडम्बना है कि राम के मन में क्रांति का बीज बोकर भी उसे अपशय ही मिलता है।

तूही मेरा क्रांती बीज वह, जिसको मैंने बोया है ।

जिसके कारण बनी अभागिन, मान-पान सब खोया है ।।''[6]

डॉ. 'व्यथित'जी द्वारा रचित 'कैकेयी के राम' की कैकेयी भरत से अधिक राम को स्नेह करती है। राम वन-गमन का ध्येय राज-सिंहासन की लिप्सा न होकर राम का भावी उत्थान है, राम की विजय यात्रा है। राम का अभ्युदय दण्ड कारण्य के बीहड़ प्रान्त में ही सम्भव था। अयोध्या में नहीं अत: कैकेयी हृदय पर पत्थर रखकर अपने लाड़ले राम को वन भेजती है। कैकेयी के निश्चल मन का वात्सल्य देखिए-

''जब तक साँस चलेगी बेटा, गुण तेरे मैं गाऊँगी ।

और लौट जब आये वन से, शान्ति तभी मैं पाऊँगी ।।''[7]

'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य में डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने विरह-वेदना के मार्मिक एवं भावभीने चित्र प्रस्तुत किये हैं। राम को विदा करते समय माता कौशिल्या का कण्ठ अवरूद्ध हो जाता है, वाणी थरथरा उठती है। माँ दौड़कर अपने लाल को सीने से चिपका लेती है-

चाही बोलू, गद्-गद् स्वर था, बोल न कुछ भी पाई थी।

दर्द भरा दिल थाम के दौड़ी सीने से चिपकाई थी ॥''[8]

राम वन-गमन के समय राजा दशरथ ही नहीं, बल्कि अयोध्या के बाल-वृद्ध, नर-नारी करूण विलाप कर रहे हैं। विरह व्यथा का करुणार्द्र चित्रण देखिए-

राजन् पटक-पटक सिर पीटे, बहुत-बहुत बिलखाये थे।

नर-नारी भी तड़प-तड़पकर, हाय-हाय ! चिल्लाये थे ॥''[9]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के लिए चिन्तन का मुख्य केन्द्र है व्यथित मनुष्य। 'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य में इस बात का ठोस सबूत है। इस खण्ड-काव्य के माध्यम से उन्होंने रामचरित मानस के एक ऐसे पात्र जिसका दोष न होते हुए भी सम्पूर्ण विश्व की आलोचनाओं का ताप सह उपेक्षित रहना पड़ा। हृदय और बुद्धि के संगम से उसके वास्तविक स्थान पर स्थापित करने का श्लाघनीय कार्य किया है। ऐसी रानी कैकेयी के साथ न्याय नहीं किया गया और वह अब तक तापित-शापित पड़ी रही उसकी इस व्यथा को 'व्यथित' जी ने समझा तथा दिल और दिमाग से मन और बुद्धि से उसका उसको उचित स्थान दिलाने का सफल प्रयत्न किया है। डॉ. 'व्यथित'जी 'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य के मंगलाचरण में ही उन्होंने अपना मंतव्य स्पष्ट कर दिया है।

चौदह वर्ष का वनवास पूरा करके लौटने के पश्चात् राम कैकेयी माता की

प्रशंसा करते नहीं अघाते। वे उनका बड़ा उपकार मानतें हुए कहते हैं-

"मैं तो तेरी छाया माते? तुझसे जीवन पाया है ।

तेरा अन्तर-बाहर निर्मल, निर्मल तेरी काया है ।।"[10]

'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य में डॉ. 'व्यथित'जी ने कैकेयी को तुलसी रचित मानस की दृष्टि में न देखकर आधुनिक कवि मैथिलीशरण गुप्त के नज़रिया से शायद देखने का प्रयत्न करते हैं। क्योंकि जहाँ गुप्त ने अपने काव्य में कैकेयी को तुलसी के दृष्टि में न देखकर एम सम्मानित नारी के दृष्टि में देखा है और प्रत्येक माता अपने पुत्र के प्रति जो भाव रखती है, वही भाव कैकेयी ने भी भरत के प्रति रखा। इसलिए कैकेयी के प्रति उपेक्षा का अभाव रखना समाज के लिए बिलकुल आवश्यक नहीं है और यही विचारधारा 'व्यथित'जी की भी रही है। प्रस्तुत खण्ड-काव्य पर दृष्टिपात करते हुए **सुरेशचन्द्र शर्मा लिखते हैं कि –** कैकेयी के राम में कविवर व्यथित जी की काव्य प्रतिभा का अनुपम फल है। इस खण्ड-काव्य के पूर्व व्यथित जी की लगभग एक दर्जन काव्य रचनाएँ प्रकाशित होकर जनता -जनार्दन के साहित्यिक मनोविनोद में सहकारिणी ही नहीं हो रही है वरन् समसामयिक परिस्थितियों में आत्मसंघर्ष की शक्ति भी पैदा करती है। सच तो यह है कि व्यथित जी की कृतियों में उपवन की खुश्बू नहीं, समाज की पीड़ा, वेदना, दर्द समाहित है। कवि की लेखनी जब गतिमान होती है, तो ऐसा प्रति होता है कि मानों बंद बिबर से ज्वाला निकल रही है जिसमें धुँआ नहीं, लपटें है। वे लपटें, जो अपनी प्रखरता से जलाकर राखकर देना चाहती है पूरी व्यवस्था को। व्यवस्था चाहे सामाजिक हो या राजनीतिक, जब उसमें विकृतियाँ आ जाती है, विद्रुपतायें पैदा हो जाती है, और समा जाती हैं घोर असंगतियाँ तो वह व्यवस्था नहीं भार बन जाती है। साम्प्रतिक परिवेश में हमारी व्यवस्था कुछ ऐसी ही बन गयी है। जिसमें जीता

हुआ हर व्यक्ति अपने को पंगु और असाह्य सा मान रहा है। ऐसी टूटती और बिलखती सामाजिक व्यवस्था के परिवेश में कवि 'व्यथित'जी की काव्य दृष्टि एक नूतन व्यवस्था निर्माण के लिए प्रयत्नशील दिखती है ''[11]

यदि काव्य साहित्य के समूचे इतिहास को देखा जाय तो अनेक काव्य रचनाएँ ऐसी मिलती है जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के चरित्र को आधार बना गया है। डॉ. 'व्यथित' जी ने राम चरित्र को अपने खण्ड-काव्य 'राघवेन्द्र' में और 'कैकेयी के राम' में एक नई सोच और नवीन कल्पना के सहारे भारतीय जनमानस को नये धरातल पर प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयास किया है। आज के सर्जक जिन बिन्दुओं को अपनी काव्य दृष्टि के समक्ष उपस्थित करने में असमर्थ रहे, उन सभी उपेक्षित बिन्दुओं को डॉ. 'व्यथित'जी की पैनी काव्य दृष्टि ने इस रचना का मूल आधार बनाया है। आज तक की भारतीय सामाजिक दृष्टि में राम कौशल्या के राम थे। कैकेयी के चरित्र को सौतेली माँ के रूप में चरितार्थ करने की सामाजिक और साहित्यिक परम्परा रही। 'व्यथित' जी ने 'कैकेयी के राम'खण्ड-काव्य में जिस मनोहर कल्पना और सोच के द्वारा कैकेयी के चरित्र को नये धरातल पर प्रतिष्ठित किया है। कवि की साहित्यिक क्षमता अपने आप में अपूर्व है।

'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य में 'व्यथित'जी द्वारा प्रतिष्ठित और चित्रित 'कैकेयी' की भूमिका में राम को मात्र 'अवधेष' के रूप में नहीं वरन् 'जगदीश' के रूप में देखना चाहती है। प्रस्तुत है, व्यथित जी की इन पंक्तियों का सौंदर्य-

''मेरा तो संकल्प यही बस, विश्व सिंहासन देना है।

विश्वजीत बन जग की नैया, प्रेम-प्रीती से खेना है॥''[12]

जीवन, व्यवहार, जगत और व्यापार में रानी कैकेयी का चरित्र डॉ. जयसिंह

'व्यथित'जी की दृष्टि में 'कौशल्या' और 'सुमित्रा' जैसी रानियों और राजा दशरथ के चरित्र से कहीं अधिक उच्चता लिए दर्शिता होता है। विश्वमित्र राजा दशरथ से यज्ञ की रक्षा हेतु जब राम और लक्ष्मण को मांगते हैं तब उन प्रसंगों में कवि की कल्पना स्वर्णिम पंख लगाकर उड़ने लगती है। राजा दशरथ पुत्र मोह में ऐसा उलझ जाते हैं कि राम और लक्ष्मण को देने से हिचकने लगते हैं। ऐसी धर्म संकट की स्थिति में कैकेयी के मोह और लोभ रहित उद्‌गार बड़े ही तार्किक, सार्वभौमिक और दूर तक दिव्यता लिए हुए झलकते हैं। दृष्टव्य है-

''मोह जाल में फँसकर स्वामी, उनको कम क्यों आँक रहे।

तम पर ज्योति दिव्य है उनकी, दुर्जन गण हैं काँप रहे ॥''[13]

इसी संदर्भ में एक और द्रष्टांत प्रस्तुत है-

''मोह राम का त्यागें स्वामी, रघुकुल गौरव मान करें।

सूर्यवंश की शान इसी में, मुनिवर का संताप रहें ॥''[14]

रामचरित मानस की रचना से लेकर आज तक कवियों, सामाजिकों, साहित्यकारो, रचनाकारों इत्यादि के दृष्टि में कैकेयी को उपेक्षा के दृष्टि से देखा जाता रहा है। यही नहीं समाज का कोई भी वर्ग अपनी पुत्री का भी कैकेयी नाम नहीं रखता है। आखिर कैकेयी के लिए इससे बढ़कर उपेक्षा क्या हो सकती है डॉ. 'व्यथित'जी ने इस उपेक्षा को समाप्त करने का प्रयत्न किया है। कैकेयी द्वारा राम को वन भेजने की योजना में काव्य दृष्टि से लोकपावन, लोकरंजक और पराकाष्ठा को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है। पुत्र राम को दक्षिण दिशा में निशाचरों के विनाश हेतु भेजने की योजना में कैकेयी के हृदयगत भावों में जो दूरदर्शिता झलकती है वह उसके व्यक्तित्व को नारी जगत की पराकाष्ठा पर पहुँचा देती है।

मेरी भी समझ से कैकेयी के चरित्र ने राम-चरित्र को लोकरंजक बनाने में अहम भूमिका निभायी है। कैकेयी के हृदयगत उच्चाभावों की झलक दर्शनीय है। जैसे-

दक्षिण दिशा निरंकुश, निशिचर, जुल्म भंयकर ढाते हैं।

सज्जन-सन्त-सनातन जितने, उनको सदा सताते हैं।''[15]

इस प्रकार 'व्यथित'जी ने राम के वन-गमन में भी कैकेयी के चरित्र की जो अहम भूमिका बताई है। निश्चित रूप से वह दुरूह कार्य अवश्य है, लेकिन उन्होंने उसे समाज सबल ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है।

इस खण्ड-काव्य में वर्णन की रोचकता हृदय में सदा चुहल सी पैदा करती है। भावों की प्रखरता में भाषा की मधुरता वर्णनातीत है। अवधी भाषा के सुपरिचित शब्द तथा हिन्दी के शैशव काल के वे शब्द जो अब घिसकर स्वरूप हीन हो गये थे, उन शब्दों को कवि ने एक नया स्वरूप देकर सराहनीय और अनुकरणीय कार्य किया है। 'कैकेयी के राम' के अधिकांश पद जिनमें अवधी भाषा के शब्दों की बहुलता है। वे 'पद' बरबस गोस्वामी तुलसीदास के 'मानस' की तथा जायसी के 'पद्मावत' की काव्य भाषा तथा काव्य तत्वों की याद दिलाती है। इन पंक्तियों का काव्य सौंदर्य तो हृदय को छू लेता है-

''गुरूजन-पुरूजन, सगे-सनेही, माँ-बहुयें सब साथ चलीं।

राम-वियोग-व्यथा से व्याकुल, जैसे पालक-पात गली।।''[16]

इस प्रकार प्रस्तुत खण्ड-काव्य मात्र आधुनिक ही नहीं है बल्कि गोस्वामी तुलसीदास और जायसी की काव्य भाषा और काव्य तत्वों को भी 'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य पढ़ने से तत्‌युगीन भाषा के साथ-साथ आधुनिक भाषा के साथ जोड़ने का प्रयास भी 'व्यथित'जी ने किया है।

राजा दशरथ का कैकेयी के प्रति मोह, मंथरा का कैकेयी के प्रति दायित्व तथा कैकेयी का पुत्र मोह इत्यादि चीजें कहीं भी किसी भी रूप में गल्त नहीं दिखाई देती। इसी बात की ओर संकेत देते हुए **डॉ. रामनाथ त्रिपाठी लिखते हैं कि –** ''कैकेयी का ऐतिहासिक सत्यरूप वाल्मीकीय रामायण में उपलब्ध है। वह रूप गर्विता युवती थी, उसका स्वभाव उग्र था। वृद्ध राजा दशरथ की वह प्राण प्रियतमा थी। वह कौशल्या के प्रति सौतिया डाह रखती थी, किन्तु राम के प्रति वह उदार थी। दशरथ ने जल्दी बाजी में राम को युवराज बनाने का निर्णय ले लिया था। यदि उन्होंने कैकेयी से परामर्श कर यह निर्णय लिया होता तो मन्थरा को कुचक्र करने का अवसर न मिलता। मन्थरा उसके मायके से आयी दासी थी। उसे अपनी रानी का पक्ष लेना ही चाहिए था। मन्थरा ने कैकेयी के मन में सौतिया डाह भड़काया और उसे समझाया कि राम के अभिषेक से भरत का भविष्य संकटापन्न हो जाएगा। कैकेयी के भीतर की मातृत्व जाग उठी और उसने जो किया वह पुत्र के मोह में किया। जब उसके अपने पुत्र भरत ने आकर उसे फटकारा तब उसे बोध हुआ कि उसने महान अनर्थ किया है।''[17]

जब राम की भक्ति का प्रचार हुआ और भरत का चरित्र श्रेष्ठ भक्त के रूप में विसकित हुआ। कवियों ने भरत की माता कैकेयी को दोषमुक्त करने की चेष्टा की। अध्यात्म रामायण में बताया गया की देवताओं के षड़यंत्र के कारण कैकेयी और मन्थरा की मति फेर दी गई। इसका प्रभाव रामचरित मानस उड़िया रामायण आदि पर भी पड़ा। वाल्मीकीय रामायण में इसका बीज उपस्थित है। भरद्वाज ने भरत से भी कहा था-भरत, कैकेयी को दोष मत दो। रामचद्रं के वन-गमन से ही देवता, ऋषियों और दानवों का हित होने वाला है।

गोस्वामी तुलसीदास और कई आधुनिक लेखक कैकेयी को बदले हुए रूप में

प्रस्तुत कर सकते हैं तो इस अधिकार से 'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य के कवि श्री डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी को कैसे वंचित किया जा सकता है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की रानी कैकेयी अन्य रानियों के साथ सौतिया डाह नहीं रखती। कैकेयी का एक ही स्वप्न है कि पुत्र राम पूर्ण भगवान बनें। इस कल्याणी का जन्म धरती के उत्कर्ष के लिए ही हुआ था। उसने राम को राजनीति की शिक्षा दी थी। राजनीति की पण्डिता रानी कैकेयी ने सोचा था कि अयोध्या राज्य से पूर्व, पश्चिम और उत्तर के राज्य सुरक्षित हैं किन्तु चिन्ता है दक्षिण राज्य की। दक्षिण की ओर प्रभाव को विस्तार कर वह राम को विश्व का सम्राट बनाना चाहती है। कैकेयी कोप-भवन इसलिए नहीं जाती कि उसे अपने पुत्र भरत का अभिषेक करना है, वह तो राम को इसलिए वन भेजना चाहती है कि उसे जगत का कल्याण करना है। मन्थरा भी उसके उस कार्य में सहायक होती है। रानी कैकेयी अपने बेटे भरत से कहती है-

किया राम निर्माण हैं मैंने, राज न केवल करने को ।

तड़प रहे जो पीड़ित जग में, उनकी बाँह पकड़ने को ॥''[18]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने काव्य को लोक-ग्राह्य बनाने के लिए कई परिर्वतन किए है। रामादि की उत्पति पुत्रेष्टि यज्ञ के फल-स्वरूप हुई थी। यज्ञ की जटिलता के फेर में सामान्य जन नहीं पड़ते है। वनवासियों की एक कथा में दिखाया गया है कि कोई मुनि रानियों के खाने के लिए फल देते है। किसी कथा में कोई जड़ी-बूटी दी जाती है। मंगोलियायी कथा में गूलर फल देने का वर्णन है। प्रस्तुत खण्ड-काव्य में गुरू वशिष्ट दो फल लाकर रानियों को देते हैं और ये फल रानियों को खिलाये गए। इससे पूर्व दिखाया गया कि पुत्र प्राप्ति के लिए डोरा-धागा बाँधे गए, भूत भगाये गए-

''अपना-अपना ढंग सभी का, अपना नुश्खा लाये थे।

कितने डोरा-धागा लाये, कितने भूत भगाये थे ॥''[19]

समाज का कुछ वर्ग ऐसा भी होता है जो समाज में अपमानित और कलंकित होने के बावजूद भी अपने कर्तव्य पथ से विमुख न होकर समाज के प्रति अपने दायित्व का रक्षा करता है। प्रस्तुत खण्ड-काव्य में कैकेयी ने भी यही किया है। इसी ओर संकेत करते हुए **डॉ. रामचरण शर्मा लिखते हैं कि** -'''कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य की कथावस्तु में ऐसे पात्रों को प्रस्तुत किया गया है, जो हमारे समाज में अपमानित, कलंकित, पीड़ित होने पर भी अपने कर्तव्य पथ से विमुख न होकर देश और समाज की रक्षा एवम् कल्याण के लिए अपना जीवन समर्पित कर गए। खण्ड-काव्य की नायिका कैकेयी भी वर्षो से तापित, शापित और अपमानित राम शत्रु के रूप में समाज में पहचानी जाती है। उसकी दु:ख-दर्द तथा समाज कल्याणकारी भावना आदि को न समझकर समाज ने उसके साथ अन्याय किया है। इसी नारी की व्यथा, कर्तव्य परायणता, दूरदर्शिता आदि को व्यथित जी ने समाज के समक्ष प्रस्तुत कर न्याय दिलाने के लिए मौलिक प्रयास किया है।''[20]

डॉ. 'व्यथित'ने कैकेयी के चरित्र के बारे में यह भी संकेत करते हैं, कि मनुष्य का उत्थान और पतन कैसे होता है, कवि का कहना है कि-

''राजमहल के सुख-वैभव से, कभी न कोई पूर्ण हुआ।

निकला त्याग महल के सुख को, सत्य वही संपूर्ण हुआ॥''[21]

अर्थात् राजमहल में रहकर सुख-वैभव का भोग करके कोई महान नहीं बन सकता। किसी को यदि महान बनना है तो, राजमहल का त्याग करना पड़ेगा। देखा जाए तो कवि की मौलिक कल्पना है, देखिए-

''राजनिति की पंडित वह तो, सचमुच की अवतारी थी।

काल-चक्र की गति से परिचित, मोह-रहित महतारी थी।।''[22]

जैसे प्रतिबिंब के लिए वस्तु अनिवार्य है, उसी प्रकार रामचंद्र का अस्तित्व माता कैकेयी के बीना शून्य है। यह कहना उचित होगा कि राम की प्रभुताई कैकेयी के साथ जुड़ी हुई है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने कैकेयी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अत्यंत कुशलता के साथ परम्परा का निर्वाह करते हुए एक नई दृष्टि प्रदान की है।

कैकेयी के संपूर्ण व्यक्तित्व पर दृष्टि पात करते हुए **डॉ. रामचरण शर्मा लिखते है कि**-''कैकेयी का अवतरण राम की लीला में सहायक होने के लिए ही हुआ था। कैकेयी राम को साक्षात् परमात्मा समझती थी और उसने जनहित को ध्यान में रखकर ही यह माँग की थी कि राम को वनवास दिया जाये। यदि राम अयोध्या में मात्र राजा बनकर ही रह जाते तो उनके विराट व्यक्तित्व का पता ही नहीं चलता। उपर्युक्त कारण से ही कैकेयी को समाज में अपमानित, कलंकित, जीवन व्यापन करने के लिए बाध्य होना पड़ा। व्यथित जी ने इसी तथ्य पर अपने विचार व्यक्त किए हैं कि समाज कैकेयी की भावना को समझ नहीं सका और उसे राम का ही सारी अयोध्या का शत्रु मान लिया गया। कैकेयी यह जानती थी कि बिना त्याग के कुछ प्राप्त करना संभव नही है। इसी कारण उसे वनवास की योजना बनानी पडी।''[23]

जिस समय राम वन के लिए प्रस्थान करते हैं, उस समय कैकेयी राम को अभिशाप नहीं बल्कि आशीर्वाद देत हुए कहती हैं कि-

''मेरा आशिष साथ सदासे, बेटा तेरे रहता है।

पथ तेरा निष्कंटक होगा, दिल मेरा यह कहता है ।।''[24]

इसी संदर्भ में एक दूसरा पद प्रस्तुत है-

जाकर वन में सफल मनोरथ, जन्म सफल कर जाना है।

मार निशाचर अवधि पार कर, लौट अयोध्या आना है ॥''[25]

भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। तत् युगीन जनता अंग्रेजो के आक्रमण से परेशान होने के कारण भक्ति अनुसरण कर रही थी। इसी समय तुलसीदास का जन्म हुआ। उन्होंने भी भक्ति के माध्यम से जनता को समन्वय भावना की ओर प्रेरित करने का कार्य किया। जिसमें समस्त धर्म, वर्ण, संप्रदाय, वर्ग आदि का समावेश हो सके। इसी ओर दृष्टिपात करते हुए **'राजेश'जी लिखते है कि** –''रामचरित मानस को चिन्तन,श्रवण और स्मरण का अद्‌भुत काव्य कहा गया है। उस समय के परिवार समाज और देश की दुर्दशा को देखकर 'गोस्वामी तुलसीदास' ने 'मानस' को लोक सम्मत बनाने का यथेष्ट साधन जुटाया। सामाजिक विरोधाभास, परस्पर विरोधी मत, सम्प्रदायों को एक जुटता देने की कोशिश की। उस समय धर्म, वर्ण मत-पथं तथा पाखंडों की धाराएँ वेगवती हो रही थीं। अन्तर्कलह विश्वयुद्ध का दृढ़ आधार बनता जा रहा था। ईर्ष्या और द्वेष की भावनाएँ आकाश को धूमिल कर रहीं थीं। अत: तुलसी ने मध्य मार्ग को मानस का प्रतिपाद्य बनाया तथा समन्वय का उचित संयोजन किया और मास को सहज, सुगम, सुबोध बनाया तथा इसे भक्तिभाव से संकीर्तित करने का सुयोग भी किया।''[26]

यदि समन्वयवाद का पक्ष उचित है तो हम पाते हैं कि व्यथित'जी ने किसी भी पात्र के अवगुणों की अनदेखी नहीं की और संत-असंत दोनों की समान रूप से स्तुति की है। राम को सारी मर्यादाओं से समवेष्ठित करके आदर्श पुरुष का संरचना किया। इस खण्ड-काव्य में अन्य पात्र गुणशील से संबलित रहते हुए भी

उपेक्षित हो गए। कैकेयी जैसी वीरांगना, विदुषी और सर्वगुण सम्पन्न नारी भी उपेक्षित हो गई तथा कथा शृंखला के अन्तराल को लोकभावना पर छोड़ दिया गया। इस अतंराल के कारण कैकेयी कुल घातिनी, पापिनी, एवं कुल नाशिनी की संज्ञा से अभिहित हुई।

देवासुर संग्राम में कब, कहाँ और कैसे दशरथ राजा ने कैकेयी को दो वरदान दिये, इसका कोई इल्लेख नहीं है। या फिर कैकेयी के जनक अश्वपति के नाती को ही उत्तराधिकारी बनाने की प्रतिज्ञा की, इसकी भी इस खण्डकाव्य में चर्चा नहीं है। इस स्थिति का सही उल्लेख मानस में उपलब्ध नहीं है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी ने नारी शक्ति की मर्यादा को प्रांसगिक बनाने के उद्देश्य से ही 'कैकेयी के राम' की रचना किया है और कैकेयी के चारित्रिक गुणों को उद्भासित किया है। डॉ. 'व्यथित' जी की रचना 'कैकेयी के राम' की सार्थकता इस तथ्य से उद्घाटित होती है कि-

मोह राम का त्यागें स्वामी, रघुकुल गौरव गान करें।

सूर्यवंश की शान इसी में, मुनिवर का संताप रहें ॥''[27]

राजा दशरथ की तीनों रानियों के स्वभाव, गुण और भावना में भिन्नता थी। रानी कैकैयी राजभवन में शोभा बनकर सीमित दायरे में रहना पसंद नहीं करती थी। कैकेयी राजा दशरथ की अशक्यता तथा राज्य संचालन की अक्ष्मता को देख रही थी। राज्य की व्यवस्था को छिन्न-भिन्न होते हुए देखकर अपनी शक्ति को इस्तेमाल करने लगी। राजा दशरथ वृद्धावस्था में थे इस वजह से प्रजा परिपालन का दायित्व उनसे निर्वाहन नहीं हो रहा था। अत: रानी के प्राणमय कोष में राम को युवराज बनाने की अभीप्सा जाग्रत हो रही थी और समय-समय पर इस आशय का प्रकटन भी करती रहती थी।

ऋषि विश्वामित्र की याचना से पुत्र मोह में फसे राजा दशरथ अवाक् रह गए। इस अवस्था को देखकर रानी कैकेयी कहती है कि-

तभी गरज कर रानी बोली, नाम कैकेयी मर्दानी ।

दे दो स्वामी 'राम-लखन' तुम नहीं तो होगी नादानी॥''[28]

कैकेयी राजनीति में निपुण औद दूर द्रष्टा थी और राम की विलक्षण प्रतिभा से परिचित थी। इसलिए राजा दशरथ के लिए 'नादानी' शब्द का प्रयोग किया। कैकेयी जानती थी कि संघर्षशील आदमी काल पुरुष हो सकता है। कष्टों, बाधाओं और विध्नों को बिना सहे मनुष्य पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकता। स्र्वणाभा अयस्क रूप में दीपित नहीं होती। अयस्क को परीक्षण, अवशेषण और कठोर तपन से गुजरना होता है। नवनीत की कोमलता, आभामयता और सुचिक्कनता को देखकर सहज प्रतीत नहीं होता हैं कि अविकल दूध है। वह सड़कर, थक्कर, जमकर और मंथन के बाद ही इस रूप में आता है।

दूध से दही तक की थकन और सड़न का प्रतीक है मक्खन। इस तरह राम को मर्यादा पुरुषोत्तम होने के लिए कठोर यात्रा करनी होगी। उस समय सम्पूर्ण आर्यावर्त राक्षसों के आतंक से भयाक्रांत था। धरती पर सुख-शांति और अमन चैन का राज्य हो, तथा अयोध्या भूमंडल मानचित्र पर सूर्य की तरह भासित हो इसका चिन्तन कैकेयी हंमेशा करती रहती थी। डॉ. 'व्यथित'जी ने कैकेयी को एक दूर द्रष्टा नारी के रूप में चित्रित करना चाहा। जहाँ एक तरफ वह राम को मर्यादा पुरुषोत्तम बनाना चाहती है, वहीं दूसरी तरफ तत् युगीन समाज में फैले हुए अशांति वातावरण को भी राम के माध्यम से समाप्त करनवाने का प्रयत्न करती थी। इसी लिए वह राम को सम्रााट बनाने के साथ-साथ, उसके लिए योग्य तप, त्याह, तपस्या आदि की तैयारी कर चुकी थी। डॉ. व्यथित के शब्दों में-

''राम बने सम्राट विश्व यह, उसकी इच्छा भारी थी।

उसके हित जो त्याग तपस्या, उसकी भी तैयारी थी ॥''[29]

जनकपुरी में राजा जनक के स्वयंवर यज्ञ में विश्व के सभी योद्धाओं, राजाओं और ऋषि-मुनियों भी अपने बल का प्रदर्शन किया परंतु धनुष्य भंग नहीं हुआ। यदि रामचंद्र जी ने धनुर्विद्या में निपुणता हासिल नहीं किया होता तो धनुष्य भंग नहीं होता। जब राम सीता के साथ अयोध्या पधारे तो कैकेयी ने हर्ष ध्वनी की।

माँ बोली मैं धन्य हुई, तू विश्वजीत कहलाया है ॥''[30]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने अपनी लेखनी को कभी भी कलंकित नहीं होने दिया। हरबार 'भरत राज्य रखवाला होगा' की संज्ञा दी। मानस कथा की शृंखला में अंतराल के कारण कैकेयी को कुल नाशिनी, कुलघातिनी की संज्ञा से जानी गई और सामाजिक अपमान से बेधित हुई। डॉ. व्यथितजी कैकेयी के उत्तम-चरित्र-चित्रण में कोई भी भूल नहीं की वरना कैकेयी के राम नहीं होते। सामाजिक परिवेश का मूल्यांकन करती हुई कैकेयी कहती है कि-

''तू ही मेरा क्रान्ति बीज वह, जिसको मैंने बोया है।

जिसके कारण बनी अभागिन, मान-पान सब खोया है ॥''[31]

पवन कुमारसिंह का कथन है कि-''डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी का नाम देखा जाये तो हिन्दी साहित्य में आदरणीय है। 'कैकेयी के राम' डॉ. 'व्यथित'जी कृत खण्ड-काव्य है। रघुवंश की परंपरा में कैकेयी की छवि कलंकित मानी जाती रही। समीक्ष्य खण्ड-काव्य में कैकेयी की कलंकित छवि को परिमार्जित करने का सफल प्रयास हुआ है। कवि की सतेज दृष्टि ने पुरातन कथा को वीसवीं सदी की मनोदशा के फ्रेम में कसकर नारी मुक्ति आन्दोलन को पूर्ण समर्थन देकर अपने मत

को सार्वजनिक किया है। अयोध्या की खुशहाली पर वज्रपात एवं सूर्यवंश के इतिहास पर ग्रहण उस समय लगा जब 'मझली रानी' के प्रेमपाश में आबद्ध अयोध्या नरेश ने राम जैसे सुकोमल प्रिय पुत्र को वचन बद्धता के निर्वाह में रानी के हठ पर चौदह वर्षो का वनवास दे दिया।''[32]

राम वन गमन का प्रसंग भारतीय संस्कृति एवं लोकजीवन पर एक गहरा आघात था। इतिहास के पन्नों में यदि देखा जाय तो रघुवंश का देदीप्यमान अतीत यहाँ आकर नारी हठ वादिता का जिस प्रकार शिकार हुआ उसके वर्णन से कैकेयी का चरित्र धूमिल ही नहीं हुआ, कलंकित भी हुआ। लोकसाहित्य से लेकर देवभाषा वाङ्मय तक रानी कैकेयी को आर्यभूमि पर तिरस्कार के अलावा और कुछ भी नहीं मिला। यद्यपि संस्कृत एवं हिन्दी साहित्य में कैकेयी के कलंक को धोने के लिए कुछ प्रयत्न हुए परंतु वे सार्थक नहीं हुए और नहीं वर्तमान सदी के विचारों का प्रतिनिधित्व करने में सार्थक हो सके। पहाड़ भर के पाप को धोने के लिए कम से कम सागर भर पानी की जरूरत होती। इसलिए कैकेयी को उबारना कठीन रहा। कैकेयी को आज तक उसके जीवन के उन खराब क्षणों का सामना करना पड़ा। यदि कैकेयी रानी राम और राजा दोनों को अतिप्रिय थी, तो उसके सारे गुण इस अवगुण के सामने बौने ही नहीं बल्कि तिरोहित हो गये। इसके विपरीत डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी ने 'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य में यह कोशिश कैकेयी के अपने चरित्र के कारण संपूर्ण रूप से कामयाब हुई है। कैकेयी रानी के मन में राम के प्रति क्या कल्पनाएँ थी उसके व्यक्तित्व का सर्वांगीण चित्रण ही 'कैकेयी के राम' का अभीष्ट है। क्योंकि किसी के मन की बातें ही उसकी व्यक्तित्व को परिभाषित करती है। यहाँ संक्षेप में कैकेयी को काव्यकार की दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है।

कैकेयी साधारण नहीं थी बल्कि वह विदुषी नारी थी। अवधपुरी की शान थी। कैकेयी रानी के अन्दर सभी गुण थे जिनके कारण वह राजा दशरथ को ही नहीं सारी प्रजा को प्रिय थी। कैकेयी रानी अति सुन्दर, गुण-गंध की मलिका ही नहीं, वीरांगना भी थी-

'रूप सुन्दरी जैसी रानी, वैसी वह मर्दानी थी ॥''[33]

कैकेयी रानी का मातृत्व भी महान था। राम भी माता कैकेयी को अति प्यारे थे। राम को कैकेयी माता में कौशल्य माँ के दिव्य दर्शन होते थे-

कैकेयी ही माँ 'कौश्लया', मन को उनके लगती थी।

वह भी उनके पीछे हरदम, सोती और न जगती थी ॥''[34]

प्रत्येक माता का पुत्र उसका भविष्य होता है। भविष्य के लिए वर्तमान का बलिदान देना होता है। माँ की मनोकामना तथा उसका स्वप्न हर समझदार माँ के लिए दूरगामी होता है। माता के सद्गुणों का विकास पुत्र की पूर्णता में सहायक होता है। राम को भी जन्मजात गुणों के अतिरिक्त विकास की सारी सँभावनाएँ 'कैकैयी रानी ' से ही मिली। 'कैकेयी के राम' की कैकेयी का स्वप्न राम को स्म्पूर्ण बनाने के लिए व्यग्र था। कैकेयी को पता था की जीवन संघर्ष के अभाव में रामचंद्र का व्यक्तित्व पूर्ण नहीं हो सकता-

''कैकेयी का स्वप्न एक बस, राम पूर्ण भगवान बने।

माया-मोह न व्यापे उसको, जीव-जगत का कलेश हरे॥''[35]

कैकेयी की दूर दृष्टि और उसका कर्तव्य बोध उसे सामान्य नारियों से अलग करता है। वह सीर्फ भरत की ही माता नहीं है परंतु कल्याण के रूप में उसका जन्म हुआ है-

''किन्तु मनोबल ऊँचा उसका, धीर-वीर क्षत्राणी थी।

धरती के उतकर्ष हेतु ही, जन्मी माँ कल्याणी थी ॥''[36]

राम के बनवास के बाद रानी अयोध्या के राज्य संचालन की व्यवस्था को एक नए आयाम देती है। यदि देखा जाए तो कुल मिलाकर रानी कैकेयी ने पुत्र राम को क्रान्ति बीज के रूप में देखा है। राम को कर्तव्य पथ पर अग्रसर होने तथा कसौटी पर खरा उतरने से वे बेहद खुश है। लक्ष्य पूर्ति हेतु अवध वासियों के सारे ताने कैकेयी को स्वीकार है। यदि उसे कोई चिन्ताकुल कर सकता है तो राम का कर्तव्य बोध। कैकेयी 'राम ध्वज' का वह दंड है जिसके अभाव में ध्वज का कभी कोई अस्तित्व न होता। कैकेयी रानी की पीड़ा और उसका समग्र चिन्तन राम की सम्पूर्णता में निहित है। अत: किसी स्वार्थ वश कैकेयी ने राम को वनवास का वरदान नहीं माँगा था परंतु राम को लोकनायक बनाने के लिए ही कैकेयी यह बिष घूँटी थी।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित 'कैकेयी के राम' खण्ड-काव्य 318 चतुष्पदियों और सात सर्गों में समन्वित है। परंतु मिलन और विरह सर्ग की आवृति दो-दो बार होती है। मेरे मंतव्य से इस निमित्तता पाठक के लिए चिंतन का विषय हो सकता है। यदि इस खण्ड-काव्य को पाँच सर्गों में ही विभाजि किया जाता तो भी शास्त्रीयता में कमी नहीं आती। संपूर्ण खण्ड-काव्य एक छंद में निबंधित है, सर्ग परिवर्तन के साथ छंद परिवर्तन का संयोग सोने पे सुहागा जैसा होता। इस खण्ड-काव्य में छंद परिवर्तन को आवश्यक तत्व माना गया है। इस रचना में 16-14 की मात्राओं का विधान किया गया है। दूसरे चौथे पद में तुक सामंजस्य है। छंद, रस और अलंकार का समूचित संयोजन काव्य को महिमा मंडित करता है। इन चतुष्पदियों की अन्तर्लयता तथा गेयता सहज है। गीतितत्व के लिए नए द्वार

SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

खोलती है, जो सराहनीय है।

इस प्रकार संपूर्ण काव्य पर यदि दृष्टि पात किया जाए तो, साहित्यिक दौर का कोई भी ऐसा अंग नहीं है जो मिलता न हो। संपूर्ण खण्ड-काव्य में 'कैकेयी' को केन्द्र में रखा गया है। जहाँ समाज कैकेयी को उपेक्षा की दृष्टि से देखता था, देखता है वहीं 'व्यथित'जी उसे एक स्वाभिमानी नारी के रूप में देखते है। उनका मानना है कि कैकेयी एक दूर दृष्टा नारी थी। क्योकिं अगर एक तरफ वह राम को वन भेजना चाहती है तो, दूसरी तरफ उसके लिए आवश्यकताओं की पूर्ति भी करना चाहती है। जैसे सोने को तपाकर ही शुद्ध किया जाता है वैसे ही व्यक्ति संघर्षो से जूझने के बाद ही जीवन की कसौटी पर खरा उतरता है।

मेरे मंतव्य से कैकेयी ने राम के लिए चौदह वर्ष का बनवास मांगकर राम के साथ अन्याय नहीं किया बल्कि अपना कर्तव्य पालन किया। दूर दृष्टा होने के कारण उसे ज्ञात था कि इस समाज के कठीन कार्य को राम ही कर सकते थे। शायद इसी लिए राम को वन और भरत को राजगद्दी माँगी। 'व्यथित'जी का भी मानना है कि वर्षो से सापित और उपेक्षित 'कैकेयी' वास्तव में एक महान नारी थी। जिसने समाज के कल्याण के लिए अपने आपको समाज के सामने उपेक्षा के दृष्टि से अर्पित करना पड़ा।

संदर्भ-सूची

1) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ- 18.

2) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ- 18.

3) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-61.

4) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पुष्ठ-61.

5) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-72.

6) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-71.

7) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-71.

8) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-73.

9) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-75

10) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ- 128

11) प्रधान संपा. डॉ. कृष्णकुमार ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ 5/84

12) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-68

13) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-22.

14) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-22.

15) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-27.

16) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-93.

17) प्रधान संपा. डॉ. कृष्णकुमार ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दन ग्रंथ, पृष्ठ 5/82

18) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-84.

19) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-08.

20) संपा. कृष्णकुमार ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/86.

21) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-17

22) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-28.

23) संपा. कृष्णकुमार ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/87.

24) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-68.

25) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-68.

26) संपा. कृष्णकुमार ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/89.

27) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-22.

28) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-21.

29) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-28.

30) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-30.

31) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-71.

32) संपा. कृष्णकुमार ठाकुर - डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/95.

33) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-05.

34) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-14.

35) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-17.

36) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-कैकेयी के राम, पृष्ठ-18.

युग-चिन्तन (काव्य-संग्रह)

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित 'युग-चिन्तन' काव्य संग्रह 1995 ई. में प्रकाशित हुई है। डॉ. 'व्यथित'जी ने अपने इन काव्य संग्रहों के विषय में जो विचार व्यक्त किये है वे इस प्रकार से है- ''गीत निर्झर'' व्यथित जी की काव्य यात्रा का प्रथम स्वतंत्र लघु पष्प गुच्छ है। इसे पाठकों ने भरपुर मान देकर सराहा। डॉ. जयसिंह 'व्यथित' काव्य साधना राष्ट्रीय अस्मिता एवं मानवता की भावभूमि पर निरन्तर अग्रसर होती रही। जिसके परिणाम स्वरूप डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की 37 काव्यों का दूसरा पुष्प गुच्छ 'युग-दर्पण' के रूप में सफल रहा। बीच -बीच में फुटकर काव्यों की रचना विभिन्न अनुभूतियों की गहन भावभूमि पर होती रही जिसमें युग बोध करनेवाली रचनाओं को डॉ. व्यथित जी ने ईमानदारी के साथ काव्य गत भिन्न-भिन्न शैलियों के साँचे में ढालकर विविध रंगी रस-थाल के रूप में परोसने का नम्र प्रयास किया है, जिसका दूसरा नाम 'युग चिन्तन'है।

डॉ. 'व्यथित'जी द्वारा रचित **'युग चिन्तन'** काव्य संग्रह में 69 कविताएँ है, जो युगीन परिस्थितियों का काव्यमय चिन्तन है। जिसमें सामयिक सम्स्याओं का चारू चित्रण तथा समुचित समाधान का समावेश को समावेश किया गया है। यत्र-तत्र आगत मात्रागत स्खलन को यदि नजर अंदाज कर दें, तो प्रस्तुत काव्य संग्रह निश्चिय ही वर्तमान युग का महत्तम काव्य संग्रह सिद्ध होगा। 'गुजरात हिन्दी साहित्य अकादमी' ने इस काव्य-संग्रह पुस्तक को पुरस्कृत कर इसे समुचित सम्मान प्रदान किया है।

डॉ. सूर्यदीन यादव का कथन है कि – ''नवयुग बोध गर्वित 'व्यथित' जी की रचनाएँ युग-चिन्तन का पुंज है, जो सूर्य किरण पुंज-सी राष्ट्रीय चेतना की द्योतक हैं। कवि मात्र यथा स्थितिवाद का उपासक नहीं होता। वह मानव व्यक्ति

नवसर्जक, समाज परिवर्तक एवं राष्ट्र निर्माता कहा जाता है।

उन्हीं कवियों में से 'व्यथित'जी एक राष्ट्रीय संघर्ष चेतना वादी विशिष्ट कवि हैं। उन्हें अपनी मातृभूमि स्वर्ग जैसी प्यारी लगती है। जिस माटी को वीर सपूत शहीद भगतसिंह ने अपने खून से सींचा, राणा और शिवाजी ने तलवारों से सँवारा, जहा गाँधी और जवाहर ने अमन के बीज बोये वहीं उसी हिन्दुस्तानी माटी की नई फसलों का स्वागत सम्मान 'व्यथित'जी करते हैं।

उस माटी की नई फसल का आओ हम सम्मान करें ।

उस माटी के कण-कण से फिर नई क्रांति निर्माण करें॥''[1]

डॉ. 'व्यथित'जी का प्रारंभिक व्यक्तित्व ही उनके चिन्तन से प्रारम्भ होता है। जिसमें कवि अपने ईष्ट देवी देवताओं की वंदना से कृति का शुभारम्भ करते हैं। वहीं कवि अपने पूज्य माता-पिता के स्मृतियों द्वारा युग -चिन्तन का जयनाद करते हैं।

व्यक्तित्वाधारित रचना को ही जीवित साहित्य माना जाता है। यथार्थमय कृतित्व रचनाकार के व्यक्तित्व पर आधारित होता है। इसलिए लेखन का आधार व्यक्ति के व्यक्तित्व का ही एक दूसरा रूप होता है। कृति की आधार शिला उसकी खुद की जानी पहचानी होती है। उस ठोस सबूत की सिद्धि और आर्थकता के लिए कवि का अपनी जमीन से जुड़े रहना आवश्यक होता है। 'व्यथित'जी अपने परिवेश से अटूट रूप से जुड़े रहकर ही लेखन कार्य की उच्च शक्ति पा सके। स्वार्थ से भरे युग में माता-पिता की अवहेलना को देख डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी चिन्तित हो उठते हैं। उनके हृदय की संवेदना व्यक्त करते हुए लिखतें हैं- .

''कंटक भरे तव मार्ग को, निष्कंट करता जो रहा।

उस राहबर की राह पर, कंटक कभी बनना नहीं।

भूलो भले सब कुछ मगर, माँ–बाप को भूलो नहीं॥''[2]

उपर्युक्त पंक्तियों से डॉ. 'व्यथित'जी ने 'युग-चिन्तन' का शुभारम्भ किया हैं। जन्मदाता माँ-बाप को ही आराध्य देवी-देवता मानकर कवि पूज्य मानता है। उसी आधार पर ही कवि कुछ सृजित-निर्मित करता है।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी चिन्तित हैं कि थोड़ी सी भी जमीन बिना जुती न रह जाय। आज के यंत्र युग में हल-जुआट और बैल की जगह ट्रेकटर से जुताई होती है, फिर भी जमीन परती (बिन बोई) रहती है। खेती और श्रम के प्रति लोगों का लगाव कम हो रहा है। यंत्र साधन सामग्री होने से खेती के प्रति रूचि बढनी चाहिए, परंतु यहाँ एकदम विपरीत हो रहा है, आदमी खेती छोड़कर नोकरी-पेशे के पीछे दौड़ रहा है। ऐसे लोगों को डॉ. 'व्यथित'जी ने सचेत करते खेती के प्रति मोड़ने का प्रयत्न करते हुए लिखते हैं कि-

सद्–उपयोग समय का कर के, चुस्ती–फुर्ती लाना है।

उसर–बंजर भूमि सभी पर,श्रम–सिन्दूर चढ़ाना है॥''[3]

अंग्रेजों के आगमन के बाद भारत की जो दयनीय स्थिति हुई थी, उसका आकलन लगभग हिन्दी के सभी साहित्यकारों ने किया है। चाहे वे भारतेन्दु रहे हों, चाहे जयशंकर प्रसाद ठीक इसी परंपरा का निर्वाह डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने भी किया है। जैसा कि आज समाचार पत्रों के माध्यम से या दूरदर्शन चैनल के माध्यम से (मिडियाई साधन) पता चलता है कि भारत-पकिस्तान सीमा पर प्रतिदिन पाकिस्तानीयों का आतंक बना रहता है। जिससे सचेत रहने के लिए आज की सरकार या जनता जवानों को प्रेरित करती है। इसी संदर्भ पर दृष्टिपात करते हुए **डॉ. सूर्यदीन यादव कहते हैं कि–** '' व्यथित जी की समाजवादी, समतावादी दृष्टि निराली है। वे दो प्रान्तों को एक चना दो दाल मानते हैं। वे भारत के हर लाल

को सचेत करते हैं कि अंग्रेजी प्रशासन में जो शोले भड़के थे, वे आज भी हिन्द की सीमाओं पर भड़क रहे हैं आतंकवादी शोलों का मुकाबला करने के लिए हर नागरिक को होशियार रहने का संदेश देते हैं।''[4]

डॉ. 'व्यथित'जी देश में फैले आतंक से लड़ने के लिए सचेत करते हुए लिखते हैं कि-

दंभी-दुश्मन परख चुके हम, पल में मार भगायेंगे ।

भारत की जय बोल-बोल हम, आगे कदम बढ़ायेंगे ॥''[5]

वर्तमान समय में जब सारे विश्व में आतंक फैला है, तब हमारे देश में हाथों पर हाथ धरे घर बैठे मरदानों को ही डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी देश की दुर्बलता मानते हैं। देश के बूढ़े बच्चे सभी सबसीडी के लिए हाथ पसारते हैं। इस अनुदानीय प्रथा से तो देश ही भिखारी हो जाएगा। युवा संतानों के जीवन में माँ-बाप सहारा क्यों देते है ? राष्ट्र के भावी विधाताओं को खुद सहारा चाहिए। राष्ट्र के हित के लिए भावी विधाताओं को पैरों पर खड़ा होना चाहिए।

अनुनय यही बस इतनी, देश के खिदमतदारों से ।

भिखमंगी औलाद बने ना, कहता पहरेदारों से ॥

कठिन परिश्रन महेनत से ही, भर जाये घर दानों से ।

देश भिखारी बन जायेगा, 'सबसीडी-अनुदानों से' ॥''[6]

हमारे देश में आज भी घर-घर में गरीबी घर किये हैं, क्या यही गाँधीजी, नेता सुभाषचंद्र बोस और जवाहर लाल नेहरु ने स्वप्न देखे थे ? पद दलित मानव मानों आज भी कविवर डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' की कविता 'कंकड़-पत्थर' की तरह ठोकरें खाता लुढ़क-पुढ़क रहा है। 'सुमन' जी की तरह 'व्यथित'जी को भी लगता

है कि अभावों के वजह से सारा देश तड़प रहा है -

''यही अभागा देश हमारा, यहाँ नहीं रसधार कहीं ।
यहाँ उदासी घर-घर छाई, दिखती कहीं बहार नहीं ।
देश भूख से तड़प रहा है, देखो विकल बेहाल यहाँ ॥''[7]

मिली हुई आज़ादी की सुरक्षा के लिए डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी हंमेशा नवीनतम् आज़ादी लाने का संदेश देते हैं। कवि को आज़ादी के उजाले में भी अंधेरा दिखता है। इसलिए शासनोधिकारियों के चुंगल में कैद आज़ादी को बारंबार मुक्त कराना चाहते हैं-

'' कहते सब आजाद देश पर, दिखता घना अँधेरा है।
शासन जिनके हाथ देश का, उनका ही पौ बारह है ॥
उनसे मुक्त कराकर अपनी, आजादी घर लाना है।
भूखे-दूखे देश जनों में, नवजीवन लहराना है॥''[8]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी कहीं स्वार्थपरता देखकर चिंतित हो उठते हैं, तो कहीं युग-परिवर्तन देख उन्हें अपना देश अलबेला लगात है। कहीं पर वे किसानों को भगवान सा मानते है, तो कहीं कुदरत की क्रूर लीला देखकर विस्मित होते हैं। कहीं उनमें आत्मविश्वास जागृत होता है, तो कहीं घनी रात के बाद प्रभात होता है। 'व्यथित'जी वतन के दुश्मनों को काला अँधेरा मानते हैं। उस काले अँधेरे को दूर करके उजाला लाने का संदेश देते हैं-

''अँधेरों ने मिलकर है लूटा- चमन को।
उन्होंने ही मिलकर उजाड़ा वतन को।
लो अँजुरी में भर-भर उलीचो अँधेरा।

किरण एक नाजुक है लाई सबेरा ॥''[9]

'युग-चिन्तन' अर्थात् जीवनानुभूतियों को शब्द, आकार, रूप, प्रतीक, बिम्ब देकर वर्तमान युग की समस्याओं के समक्ष जन-मानस की दबी-दबाई और सुषुप्त चेतना को मानव मूल्यों एवम् सुदृढ़ राष्ट्र के प्रति जागृत और उत्प्रेरित करना। जहाँ मानव आदर्शवादी और स्वार्थी बनाता जा रहा है,वही डॉ. 'व्यथित' जी यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़े-नवयुगीन भाव का आह्वाहन करते हैं। वह नवसर्जन और समाज परिवर्तन मानव के अथक प्रयास एवम् चेतनावादी संघर्ष से संभव हो सकता है। मेरे मंतव्य से 'युग-चिन्तन' उसी मानवीय चेतानात्मक संघर्ष का जीता जागता प्रमाण कहा जा सकता है-

''है यही वह वख्त जब, कुछ कर दिखाने के लिए।
सर पर शहीदी का कफन, अब सर छुपाना है नहीं ॥''[10]

आधुनिक काल में राष्ट्रीय चेतना से अनुप्रणित कवियों या साहित्यकारों की जो रचनाएँ हमे देखने को मिलती है, उस परंपरा का निर्वाह 'व्यथित'जी ने भी किया है। **प्रतापनारायण मिश्र मंहगाई** के कारण भारत वासियों की हो रही दुर्दशा की ओर संकेत करते हुए कहतें हैं कि -''मंहगी और टिकस के मारे, सगरिन वस्तु अमोली है। कौन भाँति त्यौहार मनिहैं, कैसे खेलीहैं होली हो॥'' ठीक इसी बात का संदेश **'सूर्यदीन यादव' जी ने 'व्यथित'जी के लिए संकेत देते हुए कहते हैं कि -** डॉ. 'व्यथित' जी एक तरफ कानून-विधान को ललकारते हैं और दूसरी तरफ व्यापारी वर्ग की बेईमानी पर व्यंग्यात्मक दृष्टिपात करते हैं। 'होली का हुड़ढंग'कविता में होली पर्व के अश्लीली यतार्थ को रूपायित करते हैं और कहीं चंदा-चकोरी के रागात्मक संबंधों की विरह-वेदना की सशक्त प्रेम डोर के प्रति की अनुरक्त हो व्यामोहित उठते हैं, कही मँहगाई में मनाते उत्सव पर्व की उदासी देख

उदासीन हो उठते हैं, और कहीं दिवाली के प्रकाश में देश की आर्थिक एवं सामाजिक विषमता देखकर संवेद्य हो उठते हैं। दीपावली पर्व के दीप जलाते हुए 'होम करते हाथ जलना' जैसी हालत देश के लोगों की होती है।

जागा मैं रात-रात निंदिया न आई ।
नयनों की पीर को भुलाऊँ मैं कैसे ।
दिवाली का दीपक जलाऊँ मैं कैसे ? ॥''[11]

डॉ. 'व्यथित'जी को कौड़ी के मोल बिकना पसंद नहीं है। 'व्यथित'जी को अपने अमूल्य लेखन पर गर्व है। वे जीवनानुभूति के लिए लेखन को जरूरी समझते हैं। जन कल्याण, राष्ट्र के हितार्थ और देश के सुरक्षा के लिए अपने लेखन का उद्देश्य समझते हैं। युग-चिन्तन करने से उन्हें कोई रोक नहीं सकता। हर परिस्थिति में सत्य पर्दाफाश करना अपना कर्तव्य और धर्म मानते हैं। सत्य लिखने के लिए उनकी लेखनी हमेशा मुक्त है -

''मोल कलम का लगा हजारों, कलम न बिकने पायेगी।
गायेगी मन-मुक्त मगन हो, व्यथा-कथा मन भायेगी।
भले बँधा मैं अंगुल-अंगुल कलम न बँधने पायेगी ॥''[12]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी मानव के दु:ख दर्द के साथी रहे हैं। वे जनता के पक्षधर और प्राणी के प्रति कृपा सिंधु हैं। अधर्म, अन्याय और अनीति के समक्ष वे तलवार बनकर टकराते हैं। प्रचंड आँधी और तूफ़ान में भी अपनी मानवीय शक्तियों का उपयोग करके जन, समाज और राष्ट्र की रक्षा करना चाहते हैं। यही तो एक सच्चे साहित्यकार का मानवीय धर्म है।

अंग्रेजों के जुल्मों-सितम से हमारा देश आज मुक्त है। गुलामी की बेड़िया कट

चुकी है। अंग्रेजों की गंदी राजनीति **'फूट डालों और राज करो'** हमारी अंदरुनी मामलों में और समग्र देश में आज भी व्याप्त है। आपसी फूट और टकराव में देश चकनाचूर हो जाएगा। अपने देश के लोग अपने ही राष्ट्र के लोगों को घायल करते हैं। इन सब बातों से 'व्यथित' जी दुःखी हैं और आगे लिखते हैं कि-

''आँधी क्या अंगार बनी वह, भड़क उठे फिर शोले थे।
जो भी मिला राह में उसकी, उसकी हस्ती तोले थे।
जिससे मिली ख़ाक में, बस्ती जले हजारों भोले थे ॥''[13]

ऐसी आग जली आतंकवादी, विषमताओं और समस्याओं के समक्ष संघर्षशील कवि डॉ. 'व्यथित'जी का मन समाज-समता, देश-अखण्डता के प्रति उद्वेलित हो उठा। 'व्यथित'जी के मंतव्य से एक जुट होकर ही देश की अखण्डिता को बचाया जा सकता है। सब कुछ झगड़े वैमनष्य को भूलकर वे पुनः कंधे से कंधा और कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए अपील करते हैं-

''दुःख-दर्द से दिल का ''दिया'' भी, टिमटिमा कर बुझ गया।
तो भी उठो उस ज्योति से, इस ज्योति की बाती मिला लो।
वेदना के तप्त स्वर में, एक स्वर मेरा मिला लो ॥''[14]

कृष्णमणि चतुर्वेदी 'मैत्रेय' का कथन है कि- '' 'युग-चिन्तन' डॉ. 'व्यथित'जी की एक मुक्त कृति है। इसमें 69 गीतों का लम्बा काफिला है। सभी अपनी-अपनी बात स्वतंत्र ढंग से कह रहे हैं। कवि का अन्तस्थल देश समाज और साहित्य से निरन्तर जुड़ा हुआ है। देश प्रेम की बहुतायत कविताएँ लिखकर कविवर 'व्यथित' जी ने जन जागरण किया है। कवि ने लोक पक्ष का भी गान किया है। लोक विधा में गीतों का जो भाव कवि ने भरा है वे श्रेष्ठ हैं। एक नायिका अपने स्वामी से निवेदन करती है कि आज पुलिस विभाग अत्यन्त निकृष्ट कृत्यों पर उतारू हो जाता

है। इसलिए पुलिस के थाने पर मत जाना ।

चोरवउ क लूटैं औ सहुवउ क चूसैं।
मिलिहैं मदत नहिं तोहँका रे भइया।
अपने तंगुलवा फँसाय जब पइहैं।
घरवा दुवरवा बेचावइ के जाने हो।
मति जइयो पुलिसवा के थाने हो ॥''[15]

डॉ. 'व्यथित' जी फागुन के दिनों में रससिक्त होकर चित्रण कर रहे हैं। डाल-डाल पर काली कोयल कूक रही है और उसकी मधुर वाणी मन को लुभा रही है। भौंरे बाग में मस्त हो गए हैं। वे फूल-फूल से रख- चूस कर तृप्त हो रहें हैं। दूसरी तरफ भृंग की तान श्री कृष्ण की मुरली की धुन की तरफ खींचकर कवि के मन को आकर्षित कर लेती हैं। मुरली की धुन से सभी चर-अचर मंत्र मुग्ध होते जा रहे हैं। उस तरह प्रकृति के सभी छद्म अपने उद्‌बोधन से जन-मन को मुग्धकर लेते हैं-

''फागुन के दिन चार सखी री, फागुन के दिन चार ।
डाल-डाल पे काली कोइलिया, बोलत मधुरी बैन सखी री।
जड़ चेतन रस-भोर सबै मिलि, निशि-दिन करत किलोल सखी री।
श्याम मधुर मुरली-धुनी टेरत, घर-घर सबद सुनात सखी री।
फागुन के दिन चार सखी री, फागुन के दिन चार ॥''[16]

कविवर बादल से बरसने के लिए निवेदन करता है। आँगन में गगरी खाली पड़ी है और नगर वासी प्यास से व्यग्र है। कवि चारों तरफ प्यास ही प्यास देख रहा है। उसे कोयल प्यासी दिख रही है, पपीहा तो प्यारा है ही और बकरियाँ भी प्यास से तड़प रही है। आकाश से आग का वर्षा हो रहा है ऐसा प्रति हो रहा है।

'व्यथित'जी बादल से रहम करने की बात कर रहा है। चारों तरफ पानी ही पानी दिखाई दे। सभी डगर-डगर भीगकर तर हो जाय।

''प्यासा पपिहरा प्यासी कोइलिया, प्यासी मरे बकरी बकरी।
जलते गगन से अगिनिया, नजरिया रहम करो बदरी बदरी।
कारी घटा घिरि आई सजनिया, भीजै सबै डगरी डगरी ।।''[17]

डॉ. 'व्यथित'जी समाज के संत्रास को विधिवत देखता है। जब समाज में कोई व्यक्ति दूसरी पत्नि अर्थात् पहली पत्नी की सवत लाता है, तो मन की बात कहने में संकोच रखती है। उसका हृदय द्विवधा में है। उसकी आँखों में अश्रु हैं। मुख से उसकी कोई भी बात नहीं निकल पा रही है। हलक तारू से चिपक गई है। अपने दु:ख-दर्द को खास सहेली से भी कहने में हिचक रही है। ऐसा प्रतित होता है कि सेज पर सर्पिणी सो रही है यथा -

''भीगे नयन मुख निकसे बयन नहिं।
तारू से चिपकी हलकिया, दरदिया भूले सँवरिया।
दु:खवा मैं कासे कहौं मोरि गुइयाँ, सेजिया पे सूतै सँपिनिया।
घरवा में लाये सवतिया ना।।''[18]

उसका दिल ताल की मछली की तरह तड़प रहा है। वह अपने को निराधार देख रही है और कहती है कि हे साँवरिया रात में डर लगती है। छाती पर साँपिनी सवत सो रही है। इस तरह की जुल्म देखकर डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी हैरान हैं। पपिहा पिउ-पिउ की आवाज लगाकर बुला रहा है जैसे वह पागल होकर मेरे मन को तड़पा रहा है-

तड़पे जिया जस ताल के मछरिया,
लागूँ कहाँ कइसे केकरी मैंडरिया।

डरिया लगे दिन राति रे सँवरिया।
छतिया पे लोटे सँपिनिया सवतिया।
धरवा में लाये सवतिया ना।।''[19]

कवि पतझर के बाद वसंत ऋतु को देखता है। गली-गली में कोयल कूक रही है। मधु रस की बारीस हो रही है। कल तक त्रस्त सजनी व्यग्र थी। उसमें संताप छाया हुआ था। विरह विदग्धा नायिका आज माथे पर बिंदिया लगाकर चकाचौंध कर दिया है। पिय के साक्षात्कार से वह आज अपने माथे पर बिंदिया चमका रही है।

''झूम उठा मन-मंदिर मोरा, झूम उठी तरुनाई है।
पतझड़ का परिताप मिटा अब, ऋतु वसंत लहराई है।
प्यार भरी तरबोर जवानी, अंगिया ली अंगड़ाई है।
जाम जवानी छलक-छलककर, सागर सी लहराई है।
सरसर-सरसर उड़े चुनरिया साजन-साजन गाई है।।''[20]

डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय का कथन है कि– ''आज की विषय परिस्थिति, विकृत मानसिकता वाले लोगों एवं देश द्रोहियों को देखते हुए कवि उन देश-भक्तों, स्वतंत्रता सेनानियों की याद दिलाता है। उन्होंने देश के लिए अपना सब कुछ न्यौछावर कर दिया। महाराणा प्रताप, झांसी की रानी, मंगल पांडे, चन्द्रशेखर आजाद आदि देश भक्तों में स्वार्थ का अन्धापन नहीं था किन्तु आज धृतराष्ट्र के अंधेपन ने चारों ओर अंधेरा फैला दिया है-

जहाँ किए केसरिया बाना, हर-हर की स्वर माला थी।
जहाँ देश की शान के खातिर, जौहर वाली ज्वाला थी।
जहाँ भटकते राज दुलारे, दानों के भी लाले थे।

जहाँ घास की रोटी दूभर, पड़े पाँव में छाले थे।

वहाँ घिनौने स्वार्थवाद में, भूला निज पहचान कहाँ॥''[21]

''भड़क उठे हैं शोले''कविता में एकता की भावना को स्थापित करते डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अन्याय के खिलाफ अवाज उठाने के लिए प्रेरित करते हुए लिखते हैं कि-

''हिन्दु-मुस्लिम-शिक्ख-इसाई, आपस की है नहीं लड़ाई।
धंधेदारी दुष्टजनों की, देख रहा मैं भाग-बटाई।
भाल चन्द्र भगवान बनो तुम, नेत्र तीसरा खोले॥''[22]

वर्तमान राजनैतिक स्थितियों पर डॉ. व्यथित जी करारी चोट करते हैं। वोट की राजनीति को उजागर करते हैं, परदे के पीछे की स्थितियों से अवगत कराते हैं, देश भक्तों के लिबास में गुंडों का पर्दाफाश करते हुए लिखते हैं-

''निकल पड़े भिखमंगे घर से, निकली सब की टोली है।
भीख वोट की देना भइया, यही सबों की बोली है।
भिखमंगे हैं नकली सारे, गुण्डा-दल की टोली है॥''[23]

आज का दौर जहाँ आदमी-आदमी का दुश्मन बना हुआ है, चारों तरफ पैसा ही बोल रहा है, भाई-चारा, प्यार-मोहब्बत और सद्भावना जैसे शब्द अर्थहीन साबित होता जा रहा है। ऐसे में डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी उन यथार्थों से अनुभूत होते हुए लिखते हैं-

''अन्य की तो बात और, आदमी को आदमी से,
जरा नहीं प्यार है, बात भले मीठी-मीठी,
पैसों का गुलाम वह तो, पैसों का ही यार है॥''[24]

कवि जहाँ स्वाभिमान को महत्व देता है वहीं अहंकार से दुराव रखता है, क्योंकि घमंड आदमी को ध्वस्त कर देता है। कवि इससे लोगों को बचाना चाहता है। यथा-

''बड़ा खटपटी अहम् हमारा, चैन न लेने देता है।
जहरीला डंखीला अतिशय, बाहों में भर लेता है।
डंडा-लाठी उसके साथी, दंड-नीति अपनाता है।
और खड़ा हो मध्य मार्ग में, मन का मैल बढ़ाता है।
अहम् हमारा हावी हम पर हर दम नाच नचाता है॥''[25]

'व्यापारी' कविता अतियथार्थपूर्ण है, समसामयिक वातावरण से मेल खाती है। आज का जमाना 'जिसकी लाठी उसकी भैस का है। इस युग में राजा हरिशचन्द्र को भी भीख मांगनी पड़ सकती है। इस यथार्थ को डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी व्यंग्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं-

''नम्बर दो से दुनिया चलती, नंबर एक भिखारी है।
चलना जग के साथ अगर, तो छोड़ो यह लाचारी है।
नम्बर दो का पल्लू पकड़ो, जिसका ठेकेदार हूँ॥ [26]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के स्मृति-पटल पर उनका अतीत किसान आ जाता है, 'व्यथित' औद्योगीकरण के खिलाफ नहीं हैं परन्तु किसानों को उन्नीस भी नहीं देखना चाहते, इसीलिए तो 'व्यथित'जी लिखते हैं-

'' है सवाल बस एक हमारा दुनिया के उद्योगों से,
'दाना' एक बनाकर देखो उन्नति के उद्यानों में,
शान ठिकाने आ जायेगी यही मेरा एलान है॥''[27]

डॉ. व्यथितजी 'युग-चिन्तन' के प्रत्येक काव्य में अपने स्वतंत्र अस्तित्व बोध के साथ युग की समस्याओं-विषमताओं का यथार्थ चिन्तन अत्यन्त ईमानदारी के साथ प्रस्तुत कर योग्य दिशा निर्देशन का काम किया है।

संदर्भ-सूची

1) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/100

2) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-10.

3) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-06.

4) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/101

5) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-09.

6) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-18.

7) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-23.

8) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-24.

9) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-46.

10) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग चिन्तन, पृष्ठ-12.

11) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/102

12) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-83.

13) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-93.

14) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-95.

15) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-99.

16) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग चिन्तन, पृष्ठ-106.

17) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-107.

18) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-108.

19) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-109.

20) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-104-105

21) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/97.

22) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-08.

23) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-54-56

24) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-31.

25) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-29.

26) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-60.

27) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-युग-चिन्तन, पृष्ठ-42.

अवध सतसई (दोहा–संग्रह)

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचिक 'अवध सतसई' के कुल 711 दोहे हैं। अवधी उनकी मातृ भाषा है। अवधी में उनकी पकड़ बराबर बनी हुई है। उनकी अनेक रचनाएँ अवधी भाषा में आ रही हैं। उन्ही में यह दोहा संग्रह भी है। इन दोहों में डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के मौलिक विचार हैं। मुक्तक काव्य होते हुए भी उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को सर्व समक्ष करने में समर्थ है। सामाजिक, राजनीतिक, राष्ट्रीय, रीति और नीति परक विषय दोहों के विषय है। इस दोहा संग्रह में परंपरा और आधुनिकता दर्शनीय है। इसमें जीवन-जगत और अनुभूतियों का अच्छा उपयोग किया गया है। पोखरन परीक्षण की घटना भी इसमें है। डॉ. व्यथित जी अच्छे छन्दकार हैं। व्यथित जी का पिंगल ज्ञान भी सराहनीय है।

हिन्दी साहित्य में दोहों की स्वस्थ परंपरा रहीं है। जैसे संस्कृत भाषा में अनुष्टप छन्द। हिन्दी के सिद्ध सामन्त काल में दोहा छन्द को प्रबल प्रतिष्ठा है। नाथों और सिद्धों की रचनाओं में भी दोहा है। इसमें थोड़े में बहुत कुछ कह देने की क्षमता होती है। मध्यकाल की चौपाइयों और पदों की विशेष प्रतिष्ठा रही है। किन्तु उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल में इसको प्रमुख स्थान मिला। दरबारों में दोहों की बड़ी कद्र हुई। दोहों मे सतसइयों और दोहावालियों की रचना की गई। बिहारी सतसई की रचना भी उसी काल में रची गई। छंदों में ताल, तुक और संगीत की दृष्टि से इसका महत्त्व बढा है। भक्तिकाल में रहीम और रीतिकाल में बिहारी के दोहे सबसे अच्छे हैं।

डॉ. 'व्यथित'जी ने सबको प्रस्तुत किया है। जैसे साहित्य समाज का आयना होता है। उसमें सबका कहीं न कहीं होना आवश्यक होता है। देखा जाए तो आज सबसे अधिक आवश्यकता समाज सुधार की है। समाज सुधार के बिना आज़ादी

का पूरा सुख नहीं मिल सकता है। आज अनेकता के घटक मजबूत होते रहे है। किसी भी स्तर पर एकता में स्थीरता नहीं दिखाई पड़ती। यह गाँवों एवं कृषि प्रधान देश है। जहाँ खेती बारी और चरौही के शुद्ध रूप थे, वहाँ आज छल-प्रपंच भर गए हैं। भौतिक समृद्धि के साथ-साथ मानवीय समृद्धि की भी अति आवश्यक है।

मानव इसी के कारण सबसे श्रेष्ठ हुआ है। डॉ. 'व्यथित'जी के कथन को मूलबिन्दु में है- भक्ति, वन्दना, अवध-अवधी, कवि-कविता, गाँव, खेती - किसानी, फागुन, सज्जन-दुरजन, आलस, सत्य, गरीबी, कथरी, प्रेम, पर्यावरण, नाग पंचमी, धरम-करम, भूख, माया, दहेज, क्रोध, पोखरन, स्वास्थ्य, फैसन, चिन्ता, नेता, लाठी, दुनिया, जुगुनू, बिजुरी, गाय, नीलगाय, बुढ़ापा, माई-बाबू, जातिवाद, सड़क, पिन्सिन, मूस और प्रकीर्ण। इनके माध्यम से कवि को सबके सम्बन्ध में कहने की सफलता मिली। क्योंकि सच्चा कवि वही है, जिसके मन में सबकी पीर हो, सबकी मंगल की भावना हो-

''सच्चा कवि ओहिका कही, जेकरे मन मा पीर।
सावन बरसै प्रेम कै, मन से होय फकीर॥''[1]

अब समाज की पुरानी मर्यादाएँ टूट रही है। पश्चिमी संस्कृति के तरफ हम बढ़ रहे हैं। इससे कवि को कष्ट है, क्योंकि वह परम्परावादी और भारतीयता का समर्थक हैं। आज के राजनीतिक दृष्टिकोण पर भी प्रकाश डाला गया है। जो धर्म और जाति की आड़ में अपना उल्लू सीधा कर रहा है। यह समाज और प्रजातंत्र के लिए अच्छा नहीं है।

डॉ. महेश प्रतापनारायण अवस्थी का कथन है कि –''व्यथित जी का ध्यान हिन्दी की एक प्रमुख बोली 'अवधी' की ओर गया है, जिसमें गोस्वामी तुससीदास ने विश्वविश्रुत महाकाव्य 'श्रीराम चरितमानस' की रचना की है एवं उनसे भी पूर्व

सूफी कवियों ने अपने काव्य ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें मलिक मुहम्मद जायसी का 'पद्मावत' अग्रगण्य है। इधर गुजरात हिन्दी विद्यापीठ के कुलपति स्वनाम धन्यश्री व्यथित जी ने 'विश्व अवधी-सम्मेलन' की स्थापना की है, जो उनके अगाध अवधी प्रेम का परिचायक है। मार्च 1999 में डॉ. 'व्यथित'जी के अवधी दोहों का संग्रह 'अवध सतसई' के नाम से प्रकाशित हुआ है। जिनसे कवि की प्रतिभा एवं प्रत्युत्पन्न मति का प्राणद प्रवाह परिलिक्षत होता है इसमें उन्होंने 'आपनि बात' कह दी है, जो अवधी के गद्य-रूप को उजागर करती है। डॉ. आद्याप्रसाद सिंह 'प्रंदीप' ने प्राक्कथन, डॉ. कमलशास्त्री एवं डॉ. सुरेन्द्रनाथ त्रिपाठी ने अपने अभिमान प्रस्तुत किए है। डॉ. कृष्णकुमार सिंह ठाकुर ने अपना प्रकाशकीय लिखा है, इन सबसे 'अवध सतसई' पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है।''[2]

'अवध सतसई' की सबसे बड़ी विशेषता उसका भाव-प्रवाह है। जिसमें 'व्यथित'जी रस-सिक्त हो उठे हैं। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी इस रचना में सर्वप्रथम उन्होंने वाणी-वन्दना प्रस्तुत की है, जो सराहनीय है। 'व्यथित'जी लिखते हैं-

''माई कर किरपा इहै, पहुँचि दाहिनी ओर।
सद विचार सद ग्रन्थमा, होऊँ सदा विभोर॥''[3]

इसी संदर्भ में-

''रस बरसै सरबोर ह्वै, अलंकार अधिकाय।
माई दे वरदान ई, सुत द्वारे रिरियाय॥''[4]

उपर्युक्त दोहा में 'रस बरसै सरबोर ह्वै तथा 'रिरियाय' पर ध्यान देने योग्य है, जिससे कवि की भाव-सत्ता का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

जैसे कि सर्व विधित है कि ईश्वर की भक्ति नव प्रकार से की जाती है, जिसे

नवधा भक्ति कहते हैं। भक्त की सफलता तभी प्राप्त होती है, जब व्यक्ति छल प्रपंच रहीत होकर निष्काम या निश्वार्थ भाव से ईश्वर की पूजा आराधना करता है। क्योंकि वही ईश्वर ही सबका सहारा बनता है। 'भक्ति' प्रसंग में कवि का यह कहना कितना सार्थक है-

''छल प्रपंच सब छोड़ि कै, भज प्यारे तू राम।
राम सहारा एक बा, सरै वही से काम।।''[5]

उपर्युक्त दोहा में 'बा' आँचलिक प्रयोग है। जो पूर्वी अवधी के कुछ जिलों में प्रयुक्त होता है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी की दृष्टि अत्यन्त व्यापक है, तभी तो उन्होंने 'पिन्सिन' शीर्षक में पेन्शनरों की पीड़ा को समझा है-

''सालन धक्का खाइ के, पिन्सिन लिहे बंधाय।
बाबू पावै के बाद, टङ्री रही अड़ाय।।''[6]

काव्य-रचना की सप्तशती परंपरा के अनुसरण में प्रणीत 'अवध-सतसई' सात सौ ग्यारह अवधी दोहों से रचित डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की सद्य: प्रकाशित अवधी काव्य कृति है। कुल 46 शीर्षकों के अन्तर्गत विरचित दोहों का अध्ययन करने पर यह तथ्य निर्विवाद प्रमाणित हो जाता है। सतसई की परंपरा वर्षो पुरानी है, जिसमें छोटे-छोटे दोहों को संकलीत किया जाता है। इन छोटे दोहों के माध्यम से कवि थोड़े में बहुत कुछ कहने की क्षमता रखता है। निश्चित रूप से व्यथित जी छंद शास्त्र के भी ज्ञाता हैं। इसी ओर संकेत देते हुए **मथुरा प्रसाद सिंह 'जटायु' का कहना है कि** -''कवि की पैनी दृष्टि मानव जीवन का हर कोना झाँक आयी है। चौबीस मात्राओं के अति लघु कलेवर वाला 'दोहा'छन्द पिन्गलशास्त्र की दृष्टि से अति महत्वपूर्ण है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भाव व्यक्त करने वाला यह छन्द वेद मन्त्र की शक्ति रखता है। जिस बात को कहने के लिए एक लम्बी

कविता या गीत की रचना करनी पड़ती है। उसी को 'दोहा' अत्यन्त सूक्ष्मता व सबलता से व्यक्त करने में समर्थ हैं।''[7]

हनुमान जी के अनन्य भक्त 'व्यथित'जी जगत को उजाला देने के लिए 'वीणा वन्दना' काव्य आरम्भ करते हुए शब्दार्थ के ज्ञान की याचना करते है। शांति प्राप्त करने के लिए 'अध्यात्म का ककहरा' पढ़ना तथा भक्ति मार्ग का अनुगमन करना आवश्यक है। हनुमान जी श्री राम चन्द्र के भक्त हैं। भक्त भावना में मग्न 'मीराबाई' को जहर के कटोरे मे श्री कृष्ण का स्वरूप दिखाई पड़ा। 'द्रुपदसुता'की चीर बढ़ाने के बदले में श्री कृष्ण जी ने एक 'पाई' भी दाम नहीं लिया तो प्रभु हमारा 'हाथ' क्यों नहीं पकड़ेगे ? संसार से आसक्ति और फलाशा बिना त्यागे प्रभु की कृपा नहीं होगी। 'माया' के मोह में फँसी जिन्दगी को मोह-मुक्त करने के लिए 'जीव' को 'प्रभु' की शरण में जाना ही पड़ेगा। प्रेम और सत्य के मार्ग पर चलकर ही प्रभु की प्राप्ति कर सकते है।

ईश्वर या प्रभु दरबार में छोटा-बड़ा, अमीर-गरीब, ऊँच-नीच का कोई भेदभाव नहीं है। व्यक्ति जितनी श्रद्धा से ईश्वर की भक्ति करता है, ईश्वर उतनी ही श्रद्धा से अपने भक्त को फली भूत करते हैं। लेकिन आज दूरभाग्य ऐसा है कि आज प्रभु के प्रति प्रेम मात्र पुस्तकीय बनकर रह गया है। इसी ओर संकेत करते हुए **'मथुरा प्रसाद सिंह'लिखते हैं कि –**''प्रभु के दरबार में कोई भेद भाव नहीं, वहाँ प्रेम का अथाह सिन्धु हिलोरे मार रहा है।'प्रेम' 'वारिधि' भी है और 'सेतु' भी। कवि को दुःख है कि आज 'प्रेम' मात्र पुस्तकीय वस्तु बनकर रह गया है- **'प्रेम किताबी वस्तु भै, देखा जग मा आया।' आज 'मीन–नीर' की प्रीति का अभाव' हो गया है। इसीलए प्रेम में स्थायित्व नहीं रह गया है मुँह देखी कै प्रीति ई, एकर नाय ठेकान।''**[8]

क्रोध, आलस्य, विवेक ईत्यादि के बारे में अपन मत प्रकट करते हुए वे आगे लिखते हैं कि-'क्रोध वह अग्नि है जो 'विवेक' को भस्म करके सर्वनाश कर देता है। क्रोध से दूर रहने का प्रयास करना चाहिए। 'क्रोध भयानक जहर आ, राख्या येका दूर।' आलस्य ऐसा रोग है, जिसका उपचार कठिन है। आलसी व्यक्ति अपने विनाश की नींव सुदृढ करता है-'बइठि निठल्ला आलसी, खोदै आपनि सोर।' ''[9]

जीवन को बहुमूल्य समझने वाले डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी प्रत्येक साँस का सदुपयोग करने को करते हैं। कवि जयसिंह 'व्यथित'जी को मृत्यु का भय नहीं है। कवि का कहना है कि 'जीवन' कर्मक्षेत्र है, तो 'मृत्यु' विश्राम स्थल है। शरीर नश्वर है और आत्मा अविनाशी है। आलस्य ग्रस्त लोगों को धिक्कारते हुए व्यथित जी कहते हैं कि-

''चिऊँटी चाउर कण लिहे, जावै चली पहार ।
काहिल भूखे बइठि के, रोवैं मारि दहार ॥''[10]

समाज की व्यथा से व्यथित, डॉ. जयसिंह 'व्यथित' की लेखनी गाँव की गलियों में घुमती हुई खेत-खलिहान तक पहुँचती है। 'जातिवाद' के जहर से लेकर 'दहेज,' 'भूख-प्यास' से लेकर 'गरीबी' तक, 'कथरी' से लेकर 'बिजुरी' तक, 'दूध (डेरी)' से 'दारु' तक 'गाय' से लेकर 'नीलगाय' तक, 'बचपन' से 'बूढ़ापे' तक, 'स्वास्थ्य' से 'पर्यावरण' और 'फागुन' से लेकर 'नाग पंचमी' तक लेखनी कहीं विराम नहीं लेती। महात्मा गाँधी को अपना आदर्श मानने वाले कवि को आज के 'नेता' सन्तुष्ट नहीं करते। उसके 'मन' में 'दूनिया' की चिन्ता है। उसे आज कल का 'फैसन' प्रिय नहीं। उसे अपनी 'लाठी' पर ही भरोसा है। 'माई-बाबु' के प्यार-दुलार के सहारे वह साधना की 'सड़क' पर चलता हुआ 'जीवन मृत्यु' के दु:ख तथा 'भौतिकवाद' के प्रपंच से मुक्ति पाना चाहता है। समस्त शीर्षकों को डॉ.

जयसिंह 'व्यथित' जी ने अपना वर्ण्य-विषय चुना है।

कवि के मन में जन-जन की पीड़ा समायी रहती है, प्रेम का सागर हिलोरे लेता रहता है, वह मन से 'फकीर' होता है। डॉ. व्यथित जी का कहना है कि 'कविता' सविता का प्रकाश लोकजीवन को अनुप्राणित करता है-

''सच्चा कवि ओहिका कही, जेकरे मन मा पीर।

सावन बरसै प्रेम कै, मन से होय फकीर॥''[11]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी छन्दोबद्ध कविता के पक्षधर हैं। 'व्यथित'जी के कथन के मुताबिक छन्द कविता के प्राण हैं-

''कविता साँची ऊ कही, मुँह-मुँह बोलै जौन ।

बिना राग-तुकताल के, कीमत ओकै कौन ॥''[12]

कवि को अपनी जन्मभूमि बहुत प्रिय है और अपनी मातृभाषा 'अवधी' से हार्दिक लगाव है। मातृभाषा 'व्यथित'जी को माँ के स्नेहिल आँचल में उसके दुग्ध के घुँट से प्राप्त हुई है। उसकी मिठास वह सबको चखाना चाहता है-

''माई हमका दूध मा, अवधी दिहिस पियाय ।

ओकै गजब मिठास बा, आवा दर्द चखाय ॥''[13]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी अपने बचपन के गाँव को तलाशना चाहता है, पर 'व्यथित'जी को अब छल-प्रपंच, झगड़ा, फसाद के अलावा और कुछ दिखाई नहीं देता। आज के लोग अपनी अपनी दाँव-पेंच में लगे हैं-

''पड़ी कुआँ मा भाँगि बा, पागल सगरौ गावँ ।

आपन गैर न केह लखै, मारै ठावँ कुठावँ ॥''[14]

मिट्टी और गोबर में सने हुए किसानों की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। बिवाई

फटे पाँवो को पनही तक नसीब नहीं है। वह हाड़-माँस का रसगार करके हल, हैंगा, खुरपा, कुदार, फावड़ा चलाकर प्रभूत अनाज उगाता है और 'चूनी कै रोटी' तथा 'गादा कै लपसी' खाकर मस्त रहता है। इस प्रकार 'डॉ. व्यथित'जी संपूर्ण ग्रामिण परिवेश का चित्रण बहुत ही बखुबी ढंग से किया है। खास करके अवधी ग्रामिण जनता की दैनिक उपयोगी वस्तुओं का चित्रण कवि ने बड़े ही सुचारू ढंग से किया है। डॉ. 'व्यथित'जी गाँव के सम्पूर्ण परिवेश के चित्रण के साथ वर्तमान राजनीति तथा देश की दुर्दशा की भी गहरी चिन्ता व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि-

''जोड़-तोड़ की नीति मा, भये धुरंधर लीन।
उल्लू बइठे साख पै, खूब बजावैं बीन ॥''[15]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी का कहना है कि सत्य-अहिंसा-प्रेम की बुनियाद पर खड़ा 'गाँधी' का देश आज स्वार्थान्ध हो गया है। आज के समय में बिना रिश्वत के कोई काम होने वाला नहिं-

''यक्कौ दफ्तर नाथ यस, जहाँ घूस ना लेयँ ।
मुहँ मा दूऔ हाथ बा, उत्तर कइसै देयँ ॥''[16]

सामाजिक प्रदुषण से दु:खी डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी प्रत्येक समस्या का समाधान खोज निकालने के लिए आतुर है। प्रश्न सूचक मुद्रा में 'व्यथित' जी की लेखनी कुछ इस तरह से है-

''बेटवा बिटिया बाप के, मन मा उठा सवाल ।
केकरी छान्ही तरि चली, आय घोर कलिकाल ॥''[17]

सर्वोदयी विचार धारा के चिन्तक, पोषक और प्रखर गाँधीवादी कवि डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी भारत देश की बिगड़ी हुई स्थिती को सुधार ने की भगवान

से प्रार्थना करते हुए इस दोहा काव्य का समापन करते हुए लिखते हैं कि-

"हे विधान यदि देश का, अब तौ लिह्या उबारि।

बहुत त्रस्त जनता इहाँ, बिगरी दिह्या सुधारि ॥"[18]

अपने मान-मर्यादा, कुल-कुटुम्ब, पद- प्रतिष्ठा, धन-सम्पदा, व्यवसाय आदि की वृद्धि की प्रार्थना तो प्रभु से सभी करते हैं, परंतु राष्ट्र गौरव के संवर्धन की प्रार्थना करने का किसी को समय कहाँ? राष्ट्रीयता से प्रभाविता डॉ. 'व्यथित'जी को स्वर्ग-अपवर्ग का सुख नहीं चाहिए, उन्हें तो व्यापक राष्ट्रहित ही अभीष्ट है। 'व्यथित'जी की संपूर्ण याचना, साधना और कामना राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत है। उनका सबकुछ मातृभूमि के लिए है, धरती के लिए है, मिट्टी के लिए है और देश के लिए है। इस प्रकार आज सामाजिक मात्र स्वार्थ के वशीभूति होकर ईश्वर से भी प्रार्थना करता है, तो परिवार, समाज या राष्ट्र से यदि उसकी कल्पना करे तो इसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। लेकिन डॉ. 'व्यथित' जी ने हंमेशा जो कुछ भी किया है, वह राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर किया है। इसिलए डॉ. 'व्यथित'जी एक सच्चे और जन-कवि हैं।

लोकोक्तियों, मुहावरों और सूक्तियों से भरपूर लोकभाषा अवधी की मिठास से सराबोर 'अवघ सतसई' दोहा संग्रह हिन्दी साहित्य की अमुल्य धरोहर है। संपूर्ण साहित्य जगत 'अवध सतसई' के रचनाकार डॉ. 'व्यथित'जी का ऋणी है।

डॉ. कृष्णकुमार सहिं ठाकुर का कथन है कि -"साहित्य की उत्पति भाषा के साथ ही हुई होगी। मानव ने जन्म से ही अपनी जबान में साहित्य सृजन की अनिवार्यता को महसूस किया होगा। संगीत की ताल, लयपर थिरकने के लिए मन की व्यथा मिटाने के लिए ही नहीं विचारों के सम्प्रेषण के लिए भी साहित्य को आधार बनाया होगा। यही कारण है कि साहित्य समाज की आधार शिला है। जब

मानव का मन संगीत से सराबोर हुआ होगा तब पद्य (कविता) का जन्म हुआ होगा और विचारों के आदान-प्रदान की समस्या का समाधान करने की आवश्यकता आयी होगी तो गद्य का अनुभव हुआ होगा। इस प्रकार धरती पर सर्वोच्च चेता मानव ने सामाजिक हित के लिए साहित्य में गद्य-पद्य का निर्माण किया होगा। दुनिया की सभी भाषाओं में पद्य समादृत है।''[19]

जिसके पास काव्य शक्ति और शब्द का भण्डार होगा, अनुभूति की तीव्रता होगी वह कवि उतनी ही सरस और सुन्दर काव्य सृजित करेगा। दोहा रचनाकारों की एक लम्बी शृंखला हमारे सामने है। कबीरदास, तुलसीदास, जायसी, नन्ददास बिहारी, रहीम आदि से लेकर आधुनिक काल भी इससे अलग नहीं है।

दोग्धक, अवदूहा और दूहा इत्यादि से लेकर आज दोहा साहित्य में अपना वर्चस्व बनाएँ रखा है। कम शब्दों में इसकी रचना डॉ. 'व्यथित' के लिए प्रमाण-पत्र स्वरूप होती है। ऐसा कहा जाता है कि रहीम कवि को दोहा लेखन की सिद्धि प्राप्त थी। दोहा लेखन के लिए अपने अनुभव को एक दोहे में कविवर रहीम ने इस प्रकार व्यकित किया है -

''दीरघ दोहा अरथ के आखर थोरे आहिं।
ज्यों रहीम नट कुंडली, सिमटि कुदि चलि जाँहि ॥''[20]

उपर्युक्त दोहा से स्पष्ट है कि दोहों की रचना के लिए कवि को नट का कौशल काव्य में दिखाना होता है। जैसे नट किसी छल्ले में से अपनी शरीर को समेटते हुए कूद कर उस पार निकाल लेता है, ठीक उसी तरह का व्यायाम दोहे में कवि को करना होता है। **'अरथ अमित अति आखर थोरे'** ही इस की विशेषता है।

डॉ. 'व्यथित' जी एक सच्चे कवि की तरह सच्ची कविता को परिभाषित किया

है। कवि के मंतव्य से जटिलता और दुरूहता रहित हृदय में रच-बस जाने वाली स्वर, ताल और लय से युक्त कविता ही कविता है। कविता सृष्टि का प्राण है। प्रकृति संगीतमय है। जिस दिन संगीत सो जाएगा उस दिन सारा संसार सो जाएगा। कविता का छन्दबद्ध रूप ही **'सुर सरि सम'** जग हितकारी हो सकता है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का कवि और कविता के प्रति दृष्टिकोण जीवन मूल्यों की सनातनता को स्थापित करता है और वर्तमान युगीन के छन्द बीना की कविता की अमरता को चुनौती देता है। इस प्रकार डॉ. 'व्यथित'जी का दृष्टिकोण निम्नलिखित दोहों से एकदम साफ है-

''सच्चा कवि वहि का कही, जेकरे मन मा पीर।

सावन बरसै प्रेम कै, मन से होय फकीर ॥''[21]

भारत देश गाँवों का देश है। देश का मुख्य पेशा कृषि है। आज आज़ादी के छप्पन साल बाद भी, जब हम भारतवासी इक्कीसवीं सदी में प्रवेश किए हैं तो इस अवसर पर ग्रामीणों की दुर्दशा दर्दनाक बनी हुई है। कवि ने गाँव की पीड़ा, किसानों के दु:ख दर्द को देखा ही नहीं बल्कि झेला भी है। ये सारे गाँव जब तक भूखे हैं, हमारी गाँवों की संस्कृति विपन्न है, तब तक नगर सभ्यता का कोई अर्थ नहीं। हमारा देश विकासशील देशों की पंक्ति में राजनीति नाम भले ही दर्ज करा ले किन्तु उसका विकास का नारा खोखला ही है। 'डॉ. व्यथित'जी ने इस तथ्य की गंभीरता को सहज ढंग से उजागर करते लिखते हैं कि-

''जब लगि भूखा गाँव बा, संस्कृति झोंकै भार ।

नगर उँचाई पै भले, लगे न बेड़ा पार ।''[22]

अवधी की मिठास कवि जयसिंह 'व्यथित'जी की जन्मघुट्टी में है। 'अतिथि

देवो भव' भारत की परंपरा है। इसी तरह अवध की संस्कृति में भी आतिथ्य सत्कार बेजोड़ है। जब भी हम अतिथि की बात करते हैं, तो अवध के अधिपति महाराजा रघु पर केन्द्रित हो जाता है। **'कौत्सः प्रपेदे वर तन्तु शिष्यः'** के साथ कालिदास का स्मरण हो जाता है। अवधी के सिद्ध हस्त कवि डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने कलिदास की काव्य परम्परा को अपनी 'अवध सतसई' में दोहों के माध्यम से जीवन दिया है।

''अतिथि अवध मा आइ कै, खाली कबौं न जाय।

सेवा मेवा धन मिलै, भोजन करै अघाय ।।''[23]

अवध की संस्कृति में आतिथ्य सत्कार बेजोड़ ही नहीं हैं बल्कि आतिथ्य सत्कार में प्राण तक न्यौछावर करना अवध की मर्यादा रही है। गाँवो में आज भी इसका परिपालन होता है। क्योंकि संस्कृति ऊपर से थोपी नहीं गयी है बल्कि अवध के रक्त में शामिल है-

''अहै अवध के खून मा, अतिथि न भूखा जाँय।

पहिले वन्है जेवाँइकै, पीछे घर कै खाँय ।।''[24]

भारत देश में अनेक त्यौहार मनाया जाता है। जीवन में समरता प्रदान करने वाले त्यौहारों को देशवासी भरपूर जीते हैं। बारह महीनों में फागुन का महीना बड़ा मस्त होता है। वसन्त ऋतु का आगमन नवजीवन का सन्देश देता है। सर्दी जाने वाली होती है और गरमी आने वाली होती है। सारा प्रकृति फूल-पत्तियों से लद जाता है। नवान्न की तैयारी हो जाती है। आम्र मंजरियों से लद जाते है। कोयल की कूहू कूहूक की आवाज सुनाई देती है। डॉ. 'व्यथित' जी ने फागुन का बड़ा ही सजीव और विस्तृत चित्रण किया है। 'अवध सतसई' में फागुन का अनुठा चित्रण

दोहों के माध्यम से बेजोड़ है-

"गली-गली मधु बरसि कै, मधु रितु रही निहारि ।
सजी नवोढ़ा सी धरा, टारै लाज वोहार ।।"[25]

'मधु रितु' से प्रकृति का अद्‌भुत मानवीकरण निम्नलिखित दोहे में दर्शनीय है। नवोढ़ा नायिका जैसी सजी धरती ऋतुराज के आगमन पर अपने लज्ञा रूपी अवगुण्ठन को हटा देती है। 'व्यथित' जी आगे वर्णन करते हुए जैसे कहना चाहते हैं कि उसका असीम लावण्य, विमुग्धकारी सौंदर्य और साज-श्रृंगार खुलकर सामने आ जाता है और दूसरी तरफ-

"मटर उखरि गै खेत से, गोहूँ गै उमियाय।
पियरा तीसी काटि कै, बोझ दिहेन भिरियाय।।"[26]

फागुन के रंग में रँगा, शृंगार रस का एक और दोहा रीतिकाल के बिहारी की याद दिला जाता है। भावोद्दीपन के साथ उपमेय उपमान की स्वाभाविकता में अतिशयोक्ति डूबा हुआ है-

"अंग अंग पै बा चढ़ा, नंगे पावँ अनंग ।
गोरी होरी मा लगै, भरी कमोरी रंग ।।"[27]

फागुनी बयार का एक दृश्य जो किसी भी सहृदय के हृदय को दरेरा मार सकने में समर्थ हैं-

"मदमाती राती भई, गयी दरेरा मारि ।
आम, नीम, महुआ चढ़ी, फगुनी बही बयारि ।।"[28]

प्राचिन ग्रंथों के अध्यन से ऐसा पता चलता है कि किसी युग में तोते ही संदेशवाहक हुआ करते थे। जायसी रचित 'पद्‌मावत' इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

'पद्मावत' मात्र तोते की वार्तालाप पर ही संपूर्ण कृति की रचना की है। इसी प्रकार आधुनिक युग में खास करके अवध प्रांत में ऐसा आज भी माना जाता है कि कौआ मुड़ेर (एक प्रकार से घर का उपरी हिस्सा) के उपर यदि बैठता है तो किसी का आगमन का सुचक माना जाता है। आज भी गाँव में वह परम्परा मौजूद है। निम्नलिखित दोहे में मुड़ेर पर बैठकर काग का बोलना किसी प्रिय के आगमन का सूचक है। वियोग की आग में सुलगती नायिका के नैराश्यपूर्ण हृदय में कौएँ का आशा संचारी भाव कितना हृदय को स्पर्श करता है-

''काग बँड़ेरी बइठि कै, कहै पुकारि-पुकारि।

अबकी फागुन मा इहाँ, बरसे रस कै धारि ॥''[29]

मेरे मंतव्य से डॉ. 'व्यथित'जी कौवे की भविष्य वक्ता के रूप में गहन बोध एवं सूक्ष्म दृष्टि को इंगित करते है। उपर्युक्त दोहा में 'पुकारि-पुकारि' में संक्षय हीनता, आत्मविश्वास की जो दृढ़ता दिखाई देती है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

इस तरह गाय, नाग पंचमी इत्यादि अनेक प्रसंगों पर जो हमारी संस्कृति के मूल तत्व हैं, उन सबको 'व्यथित' जी ने अपने दोहों का वर्ण्य विषय बड़े ही कौशल के साथ बनाया है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी आज की भौतिकता को सामने रखकर जब समाज में बूढ़े माँ-बाप की त्रासदी को देखते हैं, तब उनका सात्विक हृदय काँप जाता है। इसी संदर्भ में माँ-बाप के अस्तित्व को स्मरण कराते हुए वे उपदेशक की भाँति दिखाई देते हैं -

''बाबू-माई जगत मा, मिलि हैं यक्कै बार।

कइकै वनकै चाकरी, आपन जनम सुधार ॥''[30]

हमारी भारतीय संस्कृति में माँ को धरती से भी बड़ी और पिता को आकाश

से भी बड़ा माना गया है। उनका यह उपदेश विघ्नेश्वर गणेशजी और पितृभक्त श्रवणकुमार की याद दिला जाता है। जो आज के युग में प्रत्येक पुत्र के लिए उपयोगी और प्रासंगिक है।

अवध सतसई दोहा संग्रह में राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सभी विषयों पर डॉ. व्यथित जी ने कलम चलाई है। कवि ने एक विषय पर ही दोहा न लिखकर, दर्जनों दोहों की रचना की है। निम्नलिखित दोहा में डॉ. व्यथित जी ने ग्राम्य जीवन के क्षेत्र में अपनी अनुभूतियाँ को व्यक्त करते लिखते हैं कि-

''चहँटा माटी मा सनी, गाँवन कै तस्बीर ।

नोंचि चोंथि सब खात है, भारत के तकदीर ॥''[31]

यह सबको पता है कि लम्बें अरसे से गाँवों का जो शोषण हुआ है, वह नगरों का नहीं। भारत देश के लगभग सभी गाँवों में जिस कोटि की गरीबी पैर तोड़कर बैठी है उसे डॉ. 'व्यथित' जी ने निम्नलिखित दोहा व्यक्त किए हैं-

''तार-तारा कथरी भई, प्यौना लागै नायँ ।

माघ-पूस पाहुन भये, काहें जलदी जायँ ॥''[32]

फटे-पुराने कपड़ों के सहारे गाँवों का किसान माघ-पूस का जाड़ा (ठंड़ी) कठिनाई से काटता है, वह अवर्णनीय है। संसार में भूख से बढ़कर दूसरी कोई समस्या नहीं है। संसार के समस्त प्राणी इसके निराकरण में लगे रहते हैं। यहाँ तक कि तुलसीदास का बचपन भी भूख से निरंतर प्रताड़ित रहा है। तभी तो महाकवि की लेखनी से निकला है-**'जानत हौं चारि फल चारि ही चनक को।'**

डॉ. 'व्यथित'जी का कवि भी कभी भूख से त्रस्त होकर अपना गाँव विक्रमपुर (सुलतानपूर) के गाँवों की गरीबी अवश्य देखी है। जहाँ के लोग किसी समय जामुन

और महुवा खाकर अपनी क्षुधा दूर करते थे। डॉ. 'व्यथित' के निम्नलिखित दोहा से यह ज्ञात होता है-

''गाँव गरीबी मा पला, लगा भूख कै रोग ।

महुआ जामुन खाइकै, करैं गुजारा लोग ।।''[33]

जब जाडा (ठंडी) में पाला और ओला का प्रहार खेती पर हो जाता है, तब खेती नष्ट होने से गरीब और भी गरीब हो जाता है। किसान की बेटी का शादी होने वाला था, जिसका संपूर्ण दारोमदार फसल पर टिका था परन्तु पाला पत्थरों से फसल नष्ट हो गई। सब गुड़ गोबर हो गया। बेटी का ब्याह तो दूर रहा परंतु घर में लंघन की नौबत आ गई। गाँवों के कठिन जीवन का वर्णन वही कर सकता है जिसने वह जीवन भोगा और देखा हो। शायद 'व्यथित'जी के कवि ने यह जीवन बड़ी बारीकी से देखा है-

''पाला पाथर के परे, बिगड़ा घर कै साज ।

बिटिया बियहै का अहै, के पति राखै आज ।।''[34]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' को ग्रामीण जीवन की अनुभूति ही नहीं है बल्कि उसके प्रति गहरी सम्वेदना भी है। वह गाँव का कठिन और जीवन देखकर दुखी है निम्नलिखित दोहा के द्वारा अपने बिचारों को व्यक्त करते हए लिखते हैं कि-

''पनही जूता नायँ बा, फाटि बिवाई पावँ ।

ई किसान कै हाल तू, चलिकै देखा गावँ ।।''[35]

'अवध सतसई' दोहा संग्रह में डॉ. 'व्यथित'जी ने ग्राम्य जीवन के साथ-साथ देश की वर्तमान सामाजिक दशा के वर्णन किया है। हमारा देश आज महात्मा गाँधी जी के आदर्शो को भूलकर अनैतिकता के गर्त की ओर निरन्तर अग्रसर हो रहा है,

यह किसी से छिपा नहीं है। देश की इस दशा से त्रस्त देश-भक्त कवि को बड़ी व्यथा है। वह पूर्णतया आहत है और लिखते हैं कि-

''गाँधी तोहरे नावँ कै, खूब मची बा लूटि।

खून लिहेन सब चूसि अब, हाड़ रहे हैं कूटि ॥''[36]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी ने देश में किस प्रकार भ्रष्टाचार बढ़ता जा रहा है, उसका एक उदाहरण यथेष्ट है-

''सुविध ा सुल्क लिहे बिना, बाबू करैं न काम ।

अइसन बिगड़ा तन्त्र ई, पति राखैं पतिराम ॥''[37]

आज के समय में हमारे देश की राष्ट्रीय एकता को सबसे बड़ा खतरा जातिवाद से है। इस जातिवाद के वजह से हमारा राष्ट्र- छिन्न-भिन्न होता जा रहा है। इस संदर्भ में डॉ. 'व्यथित'जी का निम्नलिखित दोहा एक व्यंग्य रूप में दर्शनीय हे-

'' कउवे कोयल से कहैं, जाओ दुसरे ठाँव ।

बहुमत मेरी जाति का, छोड़ा मेरा गाँव ॥''[38]

'व्यथित' जी ने आज की राजनीति देश में किस तरह जातिवाद का जहर घोलकर स्वार्थ पूर्ति कर रही है। इस चिन्ता को कवि सार्थक करते हुए लिखते हैं कि-

''जातिवाद कै जहर अब, बोवैं नेता लोग ।

स्वारथ आपन साधिकै, लेयँ देस का भोग ॥''[39]

हमारे कवि भ्रमर को कमल और पाटल पर ही प्राय: रसार्थ बिठाते रहे हैं किन्तु यहाँ डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी के धनिया के पौधों पर भी भ्रमर मड़रा रहा

है -

"धनिया मह मह महकि कै, खूब रही इतराय।

भौंरा रस चूसै बदे, मनन मनन मन्नाय ॥"[40]

आज के अवधी कवि ग्रामीण प्रकृति के साथ-साथ ग्राम्य जीवन के चित्रण में भी लगे हुए हैं, जो हिन्दी काव्य में नहीं के बराबर है। यथा-

"गादा कै लपसी बनी, खाये भरि कै पेट ।

अलसाई लगि आँखिगै, नसा न पाये मेट ॥"[41]

इसी संदर्भ में-

"लउकी नेनुआ खेत मा, लीन करइला तोरि ।

चुनी कै रोची बनी, खाये हींका बोरि ॥"[42]

सतसई की परंपरा वर्षो पुरानी है। रहीम सतसई, दयाराम सतसई, बिहारी सतसई, इत्यादि ने सतसई लिखकर इस परंपरा को बरकरार रखने का जो प्रयत्न किया है, उसे आज तक कवियों ने बदलते युग के अनुसार कुछ परिवर्तन करके हमारे सामने प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे हैं। प्राय: देखा जाता है कि लोगो में समयाभाव ज्यादा रहता है। कम समय में बहुत कुछ कहने, बहुत कुछ समझने और समझाने का प्रयत्न सामाजिक तथा साहित्यिक वर्ग करता चला आ रहा है। इसी परंपरा का निर्वाह डॉ. 'व्यथित'जी ने अवध सतसई लिखकर किया है। जैसा कि शीर्षक (अवध सतसई) से पता चलता है कि अवध अर्थात् एक प्रांत की भाषा तथा सतसई अर्थात् 700 दोहों से युक्त रचना।

अन्य भाषाओं के अपेक्षा अवधी भाषा में साहित्यिक भंडार ज्यादा दिखाई देता

है। जिसमें महाकवि तुलसीदास का रामचरित मानस और जायसी का पद्मावत प्रमुख है।

प्रस्तुत रचना डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की स्वानुभूति पर आधारित रचना है। अपनी स्वयं की अनुभूति के आधार पर ही वे 'भक्ति' नामक शीर्षक में भगवान को ही एक मात्र सहारा मानते हुए कहते हैं कि-

''छल प्रपंच सब छोड़ी कै, भज प्यारे तू रास।

राम सहारा एक बा, सरै वही से काम ॥''[43]

साथ ही साथ अवध प्रांत की ग्रामीण तथा शहेरी दोनों समाज की परंपरा और संस्कृति को 'व्यथित' जी ने बड़े ही बखुबी ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। संपूर्ण कृति में किसी एक पहलू पर विचार न करके अवध की संपूर्ण संस्कृति और परंपरा पर दृष्टिपात किया गया है। 'अवध सतसई' दोहा संग्रह की भाषा पूरबी अवधी है, जो पूर्णतया अलंकृत है। सहज मुहाविरों और लोकोक्तियों से भाषा में चार-चाँद लगा दिए हैं।

इस प्रकार यह कृति आधुनिक साहित्य में बिहारी तथा रहीम जैसे रीतिकालीन कवियों की याद को ताजी करानेवाली है।

संदर्भ-सूची

1) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/211.

2) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-31.

3) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-19.

4) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-19.

5) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-21.

6) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-98.

7) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/208

8) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/208.

9) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/209

10) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-48.

11) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-31.

12) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-31.

13) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-25.

14) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-28.

15) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-70.

16) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-99.

17) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-102

18) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-107.

19) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/213

20) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/213.

21) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-31.

22) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-58.

23) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-20.

24) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-26.

25) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-40.

26) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-41.

27) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-42.

28) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-42.

29) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-42.

30) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-82.

31) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-27.

32) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-32.

33) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-58.

34) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-58.

35) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-32.

36) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-93.

37) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-98.

38) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-83

39) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-41.

40) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-38

41) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-39.

42) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-39.

43) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-अवध सतसई, पृष्ठ-21.

''श्री हनुमान तीसिका''

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित नवीनतम कृति श्री 'श्री हनुमान तीसिका', हनुमान चरित्र की शृंखला में अभिनव कड़ी है। केवल 30 छन्दों में रचनाकार ने राम भक्त हनुमान जी के चरित्र को अभिव्यक्ति दी है। इस कृति को उन्होंने 'भक्त और भावना की साक्षात् देवी' अपनी त्याग मूर्ति सहधर्मिणी श्रीमती शान्तिदेवी को समर्पित किया है। श्रीमती शान्तिदेवी की दिव्य प्रेरणा से इसकी रचना हुई है। डॉ. 'व्यथित' जी ने हनुमान के देवत्व, भक्ति, कर्मठता, राम के प्रति उनकी अनन्य भक्ति, मूल्यनिष्ठा, प्रचण्ड शक्ति, संगठन कौशल और ज्ञान गरिमा को वाणी दी है, 'व्यथित' की दृष्टि में हनुमान जी-

''निष्ठा-न्याय-नीति-पथगामी शुद्ध-सात्विक मानी है।

मान और सम्मान विभूषित रखते जीवन-पानी है ।।''[1]

डॉ. रामसेनहीलाल शर्मा 'पायावर' का कथन है कि -''हनुमान राम कथा के सधा कलश हैं। हनुमान असत् की दानवी छाती पर जमा हुआ सत् का चरण हैं। हनुमान अप्रतिभट योद्धा, प्रबल संगठनकर्ता, समर्पित भक्त, ज्ञानियों में अग्रगण्य और जीवन मूल्यों के संस्थापक राजनीति विशारद हैं। 'व्यथित' जी एकादश रूद्र हनुमान को कर्मवीर, राक्षसों के हृदय को कँपानेवाला 'खल बल नाशी तेज प्रतापी', 'अणिमा गरिमा लाधिमा' आदि सिद्धियों को दासी बनाकर रखनेवाला, अपनी प्रचण्ड हुँकार से भूत प्रेतों और दानवों के हृदय को कँपानेवाले कौतुष्क प्रिय और जगत उजियारे बताते है। हनुमान इसलिए श्रेष्ठ हैं कि वे-

''विद्या-बुद्धि-विनय के बल पर राज-काज नित करते हैं।

'राम' सजीवनि बूटी उनकी दिल में उसको रखते हैं ।।''[2]

'श्री हनुमान तीसिका' मे कविवर ने 30 मात्राओं और चार पंक्तियों वाले 'शोकहर' छन्द को अपनाया है। इस छन्द में 8+8+8+6 के क्रम से यदि होती है। गुजरात हिन्दी विद्यापीठ के प्रकाशन विभाग ने पुस्तक को जे.बी. संस्करण में प्रकाशित करके इस महत्वपूर्ण कृति को सर्वजन सुलभ बनाया है। मुख्य पृष्ठ पर श्री राम भक्त श्री हनुमान का आकर्षक बहुरंगा चित्र इसके मूल्य को बढ़ा दिया है। आकर्षक, मुद्रण और मनोरम है।

ध्यानेन्द्र विक्रम सिंह 'ऋषि' का कथन है कि– ''बुद्धिमानों में श्रेष्ठ हनुमान जी''अतुलित बल के धाम है, जितेन्द्रिय हैं, निष्काम कर्मयोगी हैं। सारी सिद्धियाँ उनकी सेवा में लगी रहती हैं-

अणिमा–गरिमा–लघिमा–महिमा, ऋद्धि–सिद्धि पथ–दासी है।

जिस से खिले कमल से रहते, दिखते नहीं उदासी है ॥''[3]

श्री हनुमान के परम भकग्त डॉ. 'व्यथित'जी ने अपने ईष्ट देव के आदर्शों को अपने जीवन में उतारने का संकल्प किया है। कविवर चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति मारुत-नन्दन के जीवन-दर्शन से परिचित हो, तभी वह त्याग-तपस्या और समर्पण की भावना से युक्त हो सकता है। हम जैसा इतिहास पढेंगे, जैसा चिन्तन करेंगे, वैसी हमारी बुद्धि बनेगी। श्री हनुमान जी के संपूर्ण जीवन का प्रत्येक क्षण निस्पृह त्याग से भरा हुआ है। श्री राम कार्य के लिए हनुमान जी पलभर भी विश्राम करना नहीं चाहते। इसी संदर्भ में कवि लिखते हैं-

''पलभर को विश्राम नहीं था, काल से टक्कर लेनी थी ।

सूर्योदय से पहले जाकर, जड़ी संजीवनी देनी थी ॥''[4]

श्री हनुमान जैसा पराक्रमी वीर तीनों लोक में कहीं भी नहीं दिखता जिसका

वेग मन के तुल्य हों। रण क्षेत्र में मेघनाद के शक्ति वाण से मूर्छित लक्ष्मण के उपचार हेतु उत्तर भारत के धवल पर्वत पर विद्यमान संजीवनी बूटी को अल्प समय में लाने की परिस्थिति में हनुमान की मन: स्थिति का अनुमान लगाना कितना कठिन है, परन्तु धन्य है बल-बुद्धि के आगार पवनपुत्र, जिन्होंने मार्ग में रावण द्वारा बिछाए गए विघ्न-जालों को काटते छाटते भरत को श्री राम के संकट की सूचना देते, हनुमान जी समय के पूर्व ही वान्छित औषधि को कौन कहे, पूरा पर्वत-खण्ड को उखाड़ लाए।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी बिजेथुआ के करीब के रहनेवाले हैं, जहाँ पर हनुमान जी ने 'कालनेमि' का वध और 'मकरी' का उद्धार किया था-

''उड़े पवन-सुत पवन -वेग से, राम-नाम चित लाये थे।
मिले अनेक निशाचर पथ में, उनको मार भगाये थे॥
गुप्तचरों का जाल बिछा था, पग-पग रस्ता रोके थे।
तरह-तरह के वेश बनाकर, बात-बात पर टोके थे॥'' [5]

डॉ. बैनी कृष्ण शर्मा का कथन है कि- ''भज् धातु से क्तिन् प्रत्यय करने पर निष्पन्न भक्ति शब्द का अर्थ विभाग, सेवा-शुश्रूषा तथा भगवत-पूजा आदि है। भगवान के प्रति भक्त की अनुरक्ति, आसक्ति एवं सर्व विधि समर्पण भक्ति के आधार होते है। आराधक, आराध्य को अपना सर्वस्व अर्पित कर निश्चिन्त हो जाता है क्योंकि आगे आराधक की प्रतिष्ठा बचाने का सम्पूर्ण दायित्व आराध्य के कन्धों पर चला जाता है। **इस तथ्य को बिन्दु जी ने 'मोहन-मोहिनी' में इस प्रकार व्यक्त किया है-**

''जीवन का मैंने सौंप दिया, सब भार तुम्हारे हाथों में।
उद्धार पतन अब मेरा है, सरकार तुम्हारे हाथों में ॥'' [6]

भक्त, भक्ति और भगवान का अटूट आपसी सम्बन्ध अति पुरातन काल से चला आ रहा है। भक्ति को दो भागों में बाँटा जा सकता है। सख्य और दास्य, सख्य भक्ति के अन्तर्गत भक्त भगवान को सखा-रूप मानता है और अपने कष्टों या अपनी प्रीति का उपालम्भ भगवान को देता है। दास्य भक्ति के अन्तर्गत भक्त और भगवान का सम्बन्ध दास और स्वामी का होता है। ऋग्वेद में ऋषियों की देवताओं की अर्चना में पढ़े गए मंत्रों में आदि भक्ति काव्य के मूल, तन्तुओं को सरलता से ढूँढा जा सकता है। कालान्तर में 'जटायु' भीलनी शबरी, हनुमान और विभीषण आदि राम कथा में भक्त के रूप में प्रसिद्ध हुए। कृष्ण कथा साहित्य में गोपियाँ, विदुर और कुब्जा आदि भक्त की श्रेणी में रक्खा जा सकता है।

डॉ. बैनी कृष्ण शर्मा का एक और कथन है कि -''हिन्दी साहित्य के भक्ति कालीन कवि तुलसीदास, सुरदास और मीरा आदि के श्रीमुख से भक्ति विषयक अनेक शाश्वत रचनाएँ निकली हैं। तुलसी के निम्न दोहे में भक्ति एवं प्रेमका अद्‌भुत सामंजस्य दिखाई पड़ता है-

बांध्यो बधिक पर्‌यो पुन्य जल, उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट, मरतहुँ लगी न खोंच।।
तुलसी जिनके मुखन सों, धोखेहुँ निकसत राम।
तिनके पग की पानही, मेरे तन का चाम।।''[7]

भारतीय साहित्य में श्री राम विषयक श्री हनुमान जी की भक्ति सुप्रसद्धि है। अनेक कवियों ने भी हनुमान कथा परक रचनाएँ की है। भक्त शिरोमणि वायुनन्दन का चरित्र वर्णन स्तवन तत्काल फलदायक है अत: हनुमान जी जनता में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। अंजना पुत्र श्री हनुमान जी का सम्पूर्ण चरित्र अवसाद का नाशक, सेवा भाव का प्रेरक और उदात्त मनोभावों का उन्नायक है।

डॉ. कोमल शास्त्री का कथन है कि- "आराध्य की विभुता अपनी लघुता का विश्वास ही भक्त को शरणागत होने के लिए प्रोन्मुख करती है। आराध्य के अनुग्रह के लिए शरणागत होना ही न्याय है। इसमें भक्त अपनी निराश्रयता, अकिंचनता के साथ पापों से उद्धार के लिए मन को पूर्णरूप से आराध्य को अर्पित कर देता है। योगिराज-श्री कृष्ण का वचन है-

अन्यायशिचन्तयन्तो मां जना: पर्युँपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योग-क्षेम वहाम्यहम् ॥"[8]

क्रमश: आगे डॉ.कोमल शास्त्री का कथन है कि -"आराध्य के प्रति भक्त की अनन्यता ही शरणागति है। शरणागति के 6 प्रकार उल्लिखित हैं- (1) अनुकूल संकल्प (2) प्रतिकूल वर्जन (3) रक्षा विश्वास (4)गोप्तृत्ववरण (5) आत्मनिक्षेप और (6) दैन्य-प्रदर्शन। दैन्य भक्ति का उपादान कारण है। भक्ति साधना में दैन्य का विशेष विर चित हनुमान तीसिका इस कसौटी पर खरी उतरती है-

अपनी छुद्र-बुद्धि के बल पर, कथा पवन-सुत गाता हूँ।
प्रकट देख तुम एक जगत में, शरण इसी से आता हूँ।
लेकर शरण भक्ति-वर दीजै, चिन्तन में मन लाऊँ मैं।
छोड़ पवन-सुत तुम्हें कहाँ अब, और गीत क्या गाऊँ मैं?[9]

भक्ति का आनन्द अनुभूतिजन्य आनन्द है। आराध्य में भक्त का विलयन ही भक्ति का मूलमंत्र है। भगवान और भक्त एक से हैं। यह सहजता और रागात्मकता ही जातीयता, भावात्मक तन्मयता, साम्प्रदायिकता और रुढ़िवादिता आदि विकृतियों से परे भक्त में ही नहीं लोकधर्म में भी गहरे पैठ जाती है। व्यथित जी द्वारा रचित हनुमान तीसिका में इसका निर्वहन समान रूप से हुआ है। इस कृति में अपने आराध्य के प्रति व्यथित जी के उद्‌गार उपर्युक्त के अपवाद नहीं है-

"वानर-कुल में जन्म भले, पर कर्म न वानर वाले हैं।

जन्म माप है नहीं किसी का, कर्म माप-व्रत पाले हैं॥[10]

निर्गुण भक्ति मार्ग और सगुण भक्ति मार्ग दो प्रमुख धाराएँ हैं। सगुण भक्ति मार्ग में सगुण यानी कि अवतारी रूप होता है। नाम उसी का होगा जिसका रूप होगा। नाम संकीर्तन के लिए अवतारी रूप में डूबना परमावश्यक है। नवधा भक्ति के नव प्रकारों श्रवण, कीर्तन, मनन, सेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य और आत्म निवेदन का मर्म रूपात्मक ही है। डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी 'हनुमान तीसिका' में सगुण भक्ति का वर्णन किया है, जो कि संकीर्तन काव्य है-

"सतयुग-त्रेता -द्वापर- कलियुग, देखे भक्त महान हुए।

किन्तु सभी में सर्वोपरि, श्रीराम भक्त हनुमान हुए।

आज उन्हीं की गुण-गरिमा का, आओ हम सब गान करें।

उनका अभ्दुत जीवन कैसा, उसका हम रस-पान करें॥"[11]

'श्री हनुमान तीसिका' मुक्त भक्ति काव्य है। हनुमान तीसिका से यह स्पष्ट होता है कि सगुण भक्ति की सीख कवि ने अपने परमाराध्य से ली है। उनके आराध्य भक्त शिरोमणी ही गुरू हैं-

"हम भी सीख भक्ति को लेवैं, बजरंगी के राम की।

जय जय जय हनुमान की, सुख-सम्पति के धाम की॥"[12]

'श्री हनुमान तीसिका' में शृंखलाबद्ध इस स्तुति काव्य के छन्दों में **'जय जय जय हनुमान की सुख सम्पति के धाम की'** टेक का धवन्याकर्षण लीला रस को चर्मोत्कर्ष पर पहुँचा देता है।

श्री हनुमान प्रभु राम के अनन्य भक्त हैं। उनके चरित्र के अद्‌भुत श्रावक हैं।

हनुमान जी को श्रीराम के समीप उपस्थिति अत्यन्त प्रिय है। वे राम-कार्य की सिद्ध हेतु अहर्निशि तत्पर रहते हैं। हनुमान जी की मान्यता है कि **'राम काज कीन्हे बिना मोहिं कहां विश्राम'**(राम चरित मानस) श्री राम भक्त हनुमान के स्मरण के साथ डॉ. 'व्यथित' जी निम्नलिखित छंद से कृति प्रारम्भ करते हुए लिखते हैं-

सतयुग-त्रेता-द्वापर-कलियुग देखे भक्त महान हुए ।
किन्तु सभी में सर्वोपरि श्रीराम भक्त हनुमान हुए ।।''[13]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने 'श्री हनुमान तीसिका' में हनुमान की 'सकल गुण निधानम्' विषयक योग्यता का उल्लेख किया है। वे सेवा, लोकोपकार, त्याग एवं समर्पण हेतु अपना जीवनदान करने में पीछे नहीं रहते। वे निष्ठा, नीति एवं न्याय के सच्चे अनुगामी हैं। वे परम शुद्ध और सात्विक हैं-

''हनुमत वीर महाबलशाली, भक्त-शिरोमणि ज्ञानी हैं।
सेवा-त्याग-समर्पण के हित, सरबस जीवन-दानी हैं।।
निष्ठा-न्याय-निति-पथगामी, शुद्ध-सात्विक मानी हैं।
मान और सम्मान विभूषित, रखते जीवन-पानी हैं।।[14]

श्री हनुमान जी सुग्रीव के दूत के रूप में श्रीराम के पास जाकर श्रीराम और सुग्रीव की मैत्री का आधार विनिर्मित करते हैं। मैत्री से राम तथा सुग्रीव दोनों का अभीष्ट सिद्ध होता है। उन्होंने सीता अन्वेषण के समय में नीति, बुद्धि एवं कला-कौशल से मार्ग में आई विपत्तियों को स्वयं की रक्षा की। निम्नलिखित छंद में डॉ. 'व्यथित'जी हनुमान पर आई कठिनाईयों को 'श्री हनुमान तीसिका' कृति में प्रत्यक्ष बिम्बग्राही उद्‌भावना प्रस्तुत की है। इसी संदर्भ में व्यथित जी लिखते हैं-

''सीता मैया की सुधि खातिर, लाँघ समुन्दर जाना था।

संभव नहीं असंभव जो था, संभव करके आना था ॥''[15]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी भारतीय संस्कृति में नारी सम्मान को विशेष महत्व दिया है। जब कभी भी नारी सम्मान के समक्ष प्रश्न उपस्थित होता है तब भारतीय आत्मा काँप उठती है और इसके प्रतिकार हेतु अपने किसी भी सुयोग्य पुत्र को तत्काल भेज देती है। हनुमान जी लंका में बन्दिनी सीता माता को देखकर दु:खी हो जाते हैं। वे सीता माता के दु:ख सन्तप्त को राम चर्चा करके कम करना चाहते हैं। डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी इस प्रसंग का अत्यन्त मार्मिक चित्रण किया है-

''दु:ख से विह्वल सीता मैया, तरु अशोक के नीचे थीं ।

तन की तपन अश्रु-जल खारे, जिस से तरुवर सींचे थीं ॥

देख व्यथा से व्यथित पवन-सुत, मणि-मुँदरी झट डारे थे।

देख के मुँदरी राम-नाम की, गये दिवस तब खारे थे ॥[16]

सीता की इच्छा के विरूद्ध छल से रावण ने बल पूर्वक उनका अपहरण कर लिया था। इस अन्याय के प्रति रावण को अनेकश: समझाया कि वह सीता माता को बन्दी जीवन से मुक्त कर दे, किन्तु रावण ने एक भी न सुना। हनुमान जी ने अपनी पूँछ में लगी आग से लंका को जला दिया। लंका में चारों ओर हाहाकार मच गया। 'व्यथित'जी अन्याय के प्रति हनुमान के विशे में लिखते हैं-

''उछल-कूद बहु करते कपिवर, मार रहे किलकारी थे।

कलश-कँगूरे तोड़-फोड़ सब, जला रहे बलधारी थे ॥''[17]

प्रस्तुत कृति का प्रमुख प्रतिपाद्य हनुमान चरित्र का गुणगान ही हैं किन्तु अनेक स्थलों पर अनायस ही काव्य विषयक गुण स्वयमेव उपस्थित हो गए हैं-'कान स्वरूप विकराल कपीश्वर' में अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। 'हाहाकार मचा लंका

में त्रस्त सभी नारी थे में' भय विषयक मनोवैज्ञानिक बिम्ब का अनुभव किया जा सकता है। 'उड़े पवन-सुत पवन-वेग से' गति विषयक मनोहरी बिम्ब है। काव्य की भाषा सहज बोधगम्य एवं प्रभावोत्पादित का है। 'दु:ख दर्दिन के दूर करो, यथाव्यथा डॉ. 'व्यथित' जी अज्ञान की कामना के साथ तीस छन्दों वाली श्री हनुमान तीतिका का विराम होता है।

संदर्भ-सूची

1) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/67.

2) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/67.

3) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/71.

4) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-श्री हनुमान तीसिका, पृष्ठ-38.

5) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-श्री हनुमान तीसिका, पृष्ठ-35.

6) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/68.

7) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/68.

8) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/65.

9) प्रधान संपा. कृष्णकुमार ठाकुर -डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी अभिनन्दनग्रंथ, पृष्ठ-5/65.

10) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-श्री हनुमान तीसिका, पृष्ठ-10.

11) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-श्री हनुमान तीसिका, पृष्ठ-05.

12) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-श्री हनुमान तीसिका, पृष्ठ-08

13) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-श्री हनुमान तीसिका, पृष्ठ-05.

14) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-श्री हनुमान तीसिका, पृष्ठ-09.

15) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-श्री हनुमान तीसिका, पृष्ठ-13.

16) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-श्री हनुमान तीसिका, पृष्ठ-17.

17) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-श्री हनुमान तीसिका, पृष्ठ-23.

गीत निर्झर (गीत-संग्रह)

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित 'गीत निर्झर' गीत-संग्रह 'व्यथित'जी की प्रथम प्रकाशित कृति है। इस कृति के दो भाग है, दूसरा भाग बाल संस्करण है। जिसमें कवि की बालोपयोगी रचनाएँ संकलित है। 'गीत-निर्झर' गीत संग्रह में कुल 38 गीत संकलित हैं। वीणा-वादिनी, हे वसुधा के पूज्य किसान, आज अगर बापू जो होते, लुट गया इन्सान है, पश्चिमी गगन के बादल, एक नया जग लाऊँगा, लाँध जा पंछी गगन को, गीतकर गीतों में गाओ, प्रयाण गीत, ऊँचा विजय निशान किया, तुच्छ जीवन की कहानी, सजा दो मानव का संसार, सम्बध और सलामवाद, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, दीप जलता ही रहा, छान्हि छप्पर खपरैल के देवता, किसानी करेंगे, मजूरी करेंगे, सूना है संसार वहाँ, गगन के चाँद तारों से, आँसू, पियासी धरा की निगाहों से पूछो, विनोबा-वाणी, जवानी का हवाला, पत्र पी के देश का, प्यासा राहा, गरीबी की नैया, तड़पन जिन्दगी में दिल्लगी, मोल दमन का, जिन्दगी के तार पे, खण्डहर की जिन्दगानी, आ गई बरसात प्यारी, बिखरे फूल, रिमझिम रिमझिम मेहा बरसे, बनाएँ मिट्टी से अब सोना, टूटी फूटी झोपडियों में, बापू के प्रति, लोकनायक जे. पी. (जय प्रकाश)।

डॉ. देवमणि पाण्डेय का कथन है कि -''युग को नया आयाम देने की तत्परता अविस्मरणीय है। अड़तीस धाराओं के संगम स्थल इस काव्य-संकलन का एक एक गीत हृदय के तारों को झंकृत करने की क्षमता रखता है। तभी तो कवि 'गंदे घर गलियों में गंदी एक नया जग लाऊँगा' के माध्यम से समाज की कलुषता धो देने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हैं।

आज अगर बापू जो होते, कहते सीना तान के।
दूर हटो ऐ रंगे सियारो, तुम दुश्मन इन्सान के॥''[1]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी सच्चे कर्म को करने का कायल है। कवि गति में प्रस्थान करता हुआ नवयुवकों को आगे बढ़ने के लिए पुकारता हुआ प्रतित होता है। वह कदम-कदम पर तूफान की जगह आग देखने लगता है। कदम को रोकने के लिए कवि 'व्यथित'जी मना करता है और लिखते हैं-

कदम कदम पे आग हो, तुफान भी अनेक हो।

खड़ा कराल काल हो, या मौत की पुकार हो ॥''[2]

कविवर दुश्मनों को खदेड़ कर दूर करना चाहता है। दुश्मनों के नापाक हाथ मरोड़ और तोड़ देने को 'उद्यत है। दुश्मन की छाती पर सिंह की तरह आघात करने हेतु तीव्र प्रहार करके गति से बढ़ने के लिए उद्यत है। कविवर दुश्मन की मस्ती पर मतवाला होकर आक्रोश भरे शब्दों में कहते हैं-

सवाल देश जाति का, सवाल स्वाभिमान का ।

हिमालय की आन का, स्वतंत्रता की शान का ।

कसम तुम्हें स्वदेश की, कसम तुम्हें है देश की ।

बहादुरों के तेज की, निशान हिन्द देश की ॥''[3]

उपर्युक्त छंद डॉ. 'व्यथित'जी परतंत्रता की बँधी जंजीर को तोड़ने का गुरूतर भार बहादुरों के हाथों में देख रहा था। कवि ने देखा कि धीर वीर नवजीवन देश के लिए प्राणर्पण से समर्पित हो गये। देश में सक्रिय दुश्मनों के अभिमान को खण्डित करने की आवश्यकता है।

डॉ. रामहित त्रिपाठी का कथन है कि– '' डॉ. जयसिंह 'व्यथित' कवि भी महात्मा गाँधी, संत विनोबा और क्रांतिकारी जयप्रकाश के समाजवाद को आत्मसात कर युग परिवर्तन के सपने पहले सँजोता है और उसके समर्थन में विद्रोही रचनाओं की 'अग्निवीणा' लेकर समाज के सामने आता है। सामाजिक विषमताओं के

चीत्कार और मानवीय मूल्यों के ह्रास पर वह पुकार उठता है। आज़ादी के बाद का यह संक्रांति काल है। संत विनोबा का भूदान और ग्राम दान आभा ही होता दृष्टि पथ पर है और किसानों-भूमिहीनों के बीच प्राण-प्रतिष्ठा के हेतु आकुल है। समाजवादी नव चेतना का अग्रदूत 'व्यथित'जी उन को धीरज बँधाते हुए कहते हैं-

मानवता के सच्चे माणिक जग के जलते दीप।
हृदय में प्रतिपल छाये रहते हो॥
जग कहता तुमको दुखियारा, पर करते हरदम उजियारा।
दु:खी-जन पाते तुमसे त्राण, जगत के नायक-न्याय-निधान॥''[4]

'गीत निर्झर'गीत संग्रह में 'व्यथित' सर्वतोन्मुखी है वहाँ करूणा की मंदाकिनी नि:सृत हो गई है। डॉ. 'व्यथित'जी का भावुक मन देश की दशा से क्षुब्ध है। इधर भूपतियों के द्वारा 'सवै भूमि गोपाल की' का नारा टूटता जा रहा है। अनाचार और संवेदन हीनता भरे व्यवहार से गँवई की माटी कराहने लगी है। इस दारूण वेला में डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का कवि चीख उठता है-

''लड़ा वीर वर गाँधी जन-हित, प्राणों का उत्सर्ग किया।
तोड़ गुलामी की जंजीरे, सब का हक्क समान किया।
सत्य अहिंसा के शस्त्रों से, लोक-राज्य निर्माण किया।
रहे न कोई भूखा नंगा, यह उद्‌घोष महान किया।
किन्तु यहाँ क्या होता है, मैं पूछ रहा नेताओं से।
गला घोंट कर सचाई का, हरदम झूठा ढोंग किया।
मुँह में राम बगल में छूरी, ऐसा ही व्यौहार किया।
दूर हटो ऐ रंगे सियारो, तुम दुश्मन इन्सान के॥''[5]

डॉ. 'व्यथित' जी की दिन्ही-अवधी में 38 रचनाओं का यह लघु गीत-संग्रह

तुलसी चौरे पर माटी का नन्हा सा दीप है जो आर्द्रता के बावजूद अपने आलोक से कविवर के साहित्यकार में ज्योतिपुंज बनकर आज प्रकाशित और प्रतिष्ठित है। कविता की कुँवारी धरती पर 'व्यथित' जी का उतरा 'गीत निर्झर' उनकी भाषा में प्रवाह भावों में त्वरा और प्राणों में लय संगीत भर देता है।

इस संग्रह की एक गीत रचना का शीर्षक है-'सजा दो मानव का संसार' आगे-

'' दुबले पतले भोले भाले,

चुचके चुचके गालों वालें, धरती के शृंगार।

अमिय नहीं मदिरा की प्याली,

रक्त नहीं रंगों की लाली, लक्ष लक्ष बलिदान।। [6]

डॉ. जयसिंह की भाषा शैली सहज है बल्कि हिन्दूस्तानी है और उससे माटी की सोंधी गंध आती है। 'गीत निर्झर' गीत-संग्रह की कविताओं में कवि कहीं शंक्ति नहीं अपितु अपनी रचनाओं में खासकर गीतों के प्रति उसका विश्वास साफ-साफ दिखता है।

श्रीमती पुष्पासिंह का कथन है कि -''डॉ. 'व्यथित' जी की कृतियों में गीत निर्झर वह ईंट है जो महल को अपने शीश पर लाद युगों तक चलती रहती है। कवि के साहित्यिक जीवन का शुभारम्भ इन गीतों से हुआ है। कवि ने इस ग्रन्थ को समर्पित किया है लोकनायक जय प्रकाश को। अन्तिम गीत भी उसी महापुरुष के संस्मरण में लिखा गया है। इसके अतिरिक्त कविने बापू के प्रति विनोबा और नेताजी के प्रति अपने भाव सुमन प्रस्तुत करते हुए किसान खपरैलों के देवता मजदूर के प्रति कुछ न कुछ कहते हुए कवि टूटी-फूटी झोपडियों की बात भी करने लगता है। गरीबी की नाव को चित्रित किया है जो पता नहीं किस दिशा को जा रही

है। उस जीवन को बीहड़ स्थलों से गुजरने का तथ्य सामने आता है-यथा

कहीं पर तबाही कहीं पर कोताही है।

करम की कमाही लुटी जा रही है।

जगत क्यों जलन का तराना सुनाता।

सिसकती जवानी बिती जा रही है॥''[7]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी दीन हिन किसान को देवता मानता है। कवि गर्व के साथ खेती किसानी और मजदूरी को उतारु है। परस्पर स्नेहभाव को आत्मसात करना 'व्यथित' जी अपना धर्म-कर्म मानते है। वह किसी की अमीरी नहीं चाहते। वह गरीबी में अपना जीवन बिताने का दृढ़ निश्चयी हैं। जगती के अनेक साज सजाए हमको लुभाने में समर्थ नहीं होंगे। इसी संदर्भ एक द्रष्टव्य प्रस्तुत है-

''किसानी अमरबेलि सबकी रईसी, उसी का हि पौधा बढ़ाया करेंगे।

फलेगी कभी फूल होंगे सुहाने, रसीले सदा फल चखाया करेंगे॥''[8]

डॉ. 'व्यथित'जी का जीवन एक आशावादी चितेरा है। किसानी करेंगे, और मुहब्बत की बंशी बजाया करेंगे। यह कवि की अपनी विशिष्ट परिकल्पना है। वह जिस संसार की कल्पना करता है वह विचित्र ही है। उस युग में गंदे घर और गंदी गलियाँ है। उसमें नए संसार को लेकर वह पर्दापण करेगा। उसका मार्ग सत्य और अहिंसा का होगा। उस मार्ग में न कोई ऊँचा है, न कोई नीचा है, न छुआ छूत का कहीं नाम होगा। वह नया संसार बसाने के लिए प्रयत्नशील दिखाई देगा। 'व्यथित'जी इस संदर्भ में लिखते हैं-

''और परस्पर विश्व प्रेमी की, जयमाला पहनाऊँगा।

अंधकार के अंधकूप से, अन्धा अन्ध मिटाऊँगा॥''[9]

डॉ. 'व्यथित'जी पाश्चात्य सभ्यता को पश्चिमी गगन का बादल कहता है। उन बादलों को अपनी ओर आने से रोकना चाहता है। उन बादलों को सख्ती से रोकने का निर्देश देता है। ये बादल आते हैं तो आग लगाने के लिए आते हैं, ये बादल शीतल जलवाले नहीं है। ये काले नागों सा अपना फन फैलाये रहते हैं। 'व्यथित' जी पाश्चात्य सभ्यता पर करारा प्रहार करते हुए लिखते हैं-

''ये विष्फोटक विध्वंसक बादल,

ये घुघराले काले बादल।

ये पश्चिमी गगन के बादल॥''[10]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी की समस्त रचनाएँ संघर्ष व चेतना का अद्भुत रूप लिये हुए दिखाई पड़ती है। माँ वीणा वादिनी से प्रार्थना करते हुए डॉ. 'व्यथित'जी का हृदय सामने आ जाता है जिसका द्रष्टव्य निम्नलिखित है-

''वीणा वादिनि बीन बजादे, इस जग की सूनी मजलिस में,

युग-युग से गुन-गुन करते, इन क्षीण पुराने तारों में,

छेड़ यहाँ निज तार अरे ! अब शोषण स्वर संहारों में,

वीणे ! आज मचा दे क्रान्ति नई, तू गीतों के उद्यानों में।''[11]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी का कवि हृदय सिर्फ व्यथित ही नहीं बल्कि वह देश की बिगड़ी अवस्था को देखकर आहें नहीं भरता वरन दहाड़ उठता है। कविवर क्रान्ति की ज्वाला को हर तरफ प्रज्वलित कर समाज को नई दिशा प्रदान करना चाहता है। कवि लिखते हैं-

''सिंह से दहाड़ते बढ़े चलो बढ़े चलो बाहदुरो।

कदम कदम पे आग हो, तुफान भी अनेक हो।

खड़ा कराल काल हो, या मौत की पुकार हो।

कदम तुम्हारे फिर भी कुछ रुके नहीं।

कदम तुम्हारे फिर भी कुछ झुके नहीं॥''[12]

देश में दंगा फसाद हो रहा है, चोरी, हिंसा, बलात्कार, राहजनी आदि घटनाएँ हो रही हैं। समाज में चारों तरफ अजारकता फैला हुआ है। ऐसी परिस्थितियों में कवि को वर्तमान समाज से निराशा सी हो गई है। कवि वर्तमान समाज से नहीं वरन कुछ पीछे हटकर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जैसे महान क्रान्तिकारी का पुन:आह्वाहन करते हुए कहते हैं-

''भुजाओं से शक्ति कड़कती फड़कती,

शिराओं से बिजली उछलती चमकती,

बयालिस के मजमे में कैसी मचलती,

वही खून फिर से उबालों में लाओं,

मरा दिल, हो उठके खड़ा, जो जिधर हो,

गये तुम किधर हो गये तुम किधर हो?''[13]

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी आधुनिक कवियों में अपनी पहचान पृथक बनाए हुए हैं। सर्वोदयी चिन्तन धारा से प्रभावित, पीड़ित समाज और शोषित के पक्षधर कविवर ने आधुनिक जीवन में व्याप्त अन्याय, पक्षपात, असमानता और आडम्बरों पर जोरदार व्यंग्य प्रहार किया है। 'व्यथित' जी का काव्य असहायों, पीडितों और दलितों की व्यथा कथा है। साथ ही साथ उन्होंने जोशीली आवाज से प्रहार कर जनता को अत्याचारों के विरूद्ध लड़ने, उठ खड़ा होने के लिए उत्साहित किया है।

इस तरह कहा जा सकता है कि डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी एक ऐसे सहज और सरल कवि हैं, जो भावोवेषित होकर जमीन से जुड़ी हुई व्यथा कथाओं को

काव्यांकित करते रहे हैं। उनका काव्य उनकी व्यक्तित्व की समग्र भंगिमाओं को निर्देशित करता है।

अगले अध्याय में हम उनकी गद्य रचनाओं का सम्यक अध्ययन प्रस्तुत कर रहें हैं।

संदर्भ-सूची

1) डॉ. देवमणि पाण्डेय- लहरों पर नाव, पृष्ठ-09.

2) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-गीत-निर्झर, पृष्ठ-09.

3) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-गीत-निर्झर, पृष्ठ-09.

4) डॉ. रामहित त्रिपाठी- लहरों पर नाव, पृष्ठ-11.

5) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-गीत-निर्झर, पृष्ठ-03.

6) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-गीत-निर्झर, पृष्ठ-12.

7) श्रीमती पुष्पासिंह- लहरों पर नाव, पृष्ठ-14.

8) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-गीत-निर्झर, पृष्ठ-17.

9) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-गीत-निर्झर, पृष्ठ-06.

10) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-गीत-निर्झर, पृष्ठ-05.

11) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-गीत-निर्झर, पृष्ठ-01.

12) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-गीत-निर्झर, पृष्ठ-09.

13) डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी-गीत-निर्झर, पृष्ठ-14.